नीति शिरोमणि

जिसमें

परम नीतज्ञ महात्मा विदुरजी का वह सत्योपदेश है जो उन्होंने
विपत्ति ग्रस्त महाराजा धृतराष्ट्र को किया है

है और तदानुसार चलने से
मिलता है

को

जारीलाल मिश्र वैद्य अथवा
जो जपो से सम्पूर्ण मनुष्यों के हितार्थ
शुभ
पु. विरजानन्द दैवकरणि
पु परिग्रहण कमांक 2154
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कु

चिम्मनलाल वैश्य ने योग्य पण्डितों की सहायता से
मुद्रित कराके प्रकाशित किया

—— डा० भवानीलाल भारतीय

संख्या ... नीति ... 96 ...
तिथि ... 3-5 ...
पुस्तकालय ... 6497 ...

वेंकटेश्वर यन्त्रालय शाहजहांपुर में
खेताखरसिंह के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ।

सन् १८८४ ई०

[प्रथम बार १०००]

भूमिका.

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि
परासुव यद भद्रन्तन्न आसुव ॥ अ० अ० ३ मं० ३

महाश्य गणों में आप की सेवा में नीतिशिरोमणि अर्थात परम नीत महात्मा विदुर जी का वह सत्योपदेश जो उन्होंने विपत्त युक्त महाराजा धृतर जी को किया था भेंट करता हूं स्वीकार कीजिये।

यदि आप को संसारिक पारिलौकिक सामाजिक सुखों की अभिलाषा है सत्य सनातन धर्म के अनुकूल अपने आचरणों को सुधार आनंद प्राप्त कीजि जैसा कि महाराज विदुर जी ने कहा है—

दुर्व्वचः शत्स्यसि चेद्यथावन्निशम्य सर्वं प्रति पद्य मेव
यशः परं प्रापस्यासि जीवलोके भयं नचामुत्र न चेहतेस्ति

अर्थात् हे राजन् मैं ने जो आप से सनातन धर्म वर्णन किया यदि आप इ अनुकूल कार्य करेंगे तो अवश्य आप को यश आनन्द और सुख प्राप्त हो अन्यथा नहीं।

यही सनातन धर्म यही स्वर्ग का मार्ग यही परमानन्द का हार है, सच पू तो मनुष्य मात्र के लिये अमृत रस है, जिसके पान करने से भ्रान्ति धारणा होजाती है और धर्म का अङ्कुर जमजाता है।

प्रियवरों आज दशहरा अर्थात् विजयदशमी है, आज ही के दिन मर्य्य पुरुषोत्तम धर्म मूर्ति श्री रामचन्द्र जी ने रावण को मार धर्म की मर्यादा स्थापन किया था, इसलिये आइये, आप भी प्रसन्न चित्त हो इस नीति शिर पि का पाठकर हिंसा, क्रोध, अजितेन्द्रता, द्वेष, ईर्षा, आदि अधर्म रूपी रा सों को मार सनातन धर्म नीत्यानुसार आचरणों को सुधार संसार में वि का डंका बजाइये फिर देखिये चहुंओर कैसा आनन्द आता है।

अन्त में मैं उन पण्डित साहिब महाशय को जिन्हों ने इस पुस्तक के प्र शित करने में मुझे बहुत सहायता दी है धन्यवाद देता हूं

आपका शुभचिंतक

चिम्मनलाल वैश्य

कोठी भाई रामचरण मक्खीलाल साहिब

तिलहर जिला शाहजह

ॐ

स्वर्गालाप

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्य्यमेव वा ।
विचरत्य समुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥ १ ॥
आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ २ ॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकःश्रद्दधान एतत् पण्डित लक्षणम् ॥ ३ ॥
क्रौथो हर्षश्चदर्पश्च ह्रीःस्तम्भोमान्यमानिता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ ४ ॥

भाषार्थ

जो धनवान्, विद्वान् और ऐश्वर्यवान् होकर अभिमान को त्यागते हैं वही पण्डित हैं ॥ १ ॥

जिसको आत्मज्ञान और सहनशील हो, जो नित्य धर्म करता हो, यथावत अर्थ जानता हो, और जो सब कार्यों को सोच विचार कर करता हो वही पण्डित है ॥ २ ॥

जो आर्य धर्म अर्थात् उत्तम कर्मों का सेवन और निन्दित कर्मों का त्याग करे, अर्थात् ईश्वर को सत्य माने और जो श्रद्धावान हो पण्डित है ॥ ३ ॥

जो क्रोध रहित आनंद युक्त बलवान्, लज्जावान्, धीर्यवान्, और निराभिमान हो वही पण्डित है ॥ ४ ॥

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितंपरे ।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ ५ ॥
यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीत मुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥ ६ ॥
यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्त्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥ ७ ॥
यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथा शक्ति च कुर्वते ।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डित बुद्धयः ॥ ८ ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थं तत्
प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ ९ ॥

जिसके विचार और उपाय को सिवाय पण्डित और विद्वान के और कोई पुरुष न जाने वही पण्डित है ॥ ५ ॥

जिसके कार्य को शीत, उष्ण, भय और कामादि हानि न पहुंचासके और जिसकी बुद्धि ऐश्वर्य और अनैश्वर्य अर्थात् धनाढ्यता और निरधनता में एक सी रहे वही पंडित है ॥ ६ ॥

जिसके उपदेश को बुद्धिमान मनुष्य धर्म अर्थ और मोक्ष के लिये ग्रहण करें वही पंडित है ॥ ७ ॥

जो यथा शक्ति कार्य करने की इच्छा करके उसे कर दिखाता है, न अपने अपमान से डरता और न किसी का अपमान करता है वही पंडित है ॥ ८ ॥

जो यथार्थ अर्थ को शीघ्र जान लेता है, देर तक सुन कर और विचार करके तात्पर्य को देखकर कार्य करता है, जो काम क्रोध से कोई कार्य नहीं करता और बिना प्रश्न उत्तर नहीं देता वही पंडित है ॥ ९ ॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डित बुद्धयः ॥ १० ॥
निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥ ११ ॥
आर्य्यकर्माणि रज्यन्ते भूति कर्माणि कुर्वते ।
हितञ्च नाभ्य सूयन्ति पंडिता भरतर्षभ ॥ १२ ॥
न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमाने न तप्यते ।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पंडित उच्यते ॥ १३ ॥
तत्त्वज्ञः सर्व भूतानां योगज्ञः सर्व कर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नर पंडित उच्यते ॥ १४ ॥
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशुग्रन्थार्थवक्ता च यः स पंडित उच्यते ॥ १५ ॥

जो नष्ट वस्तु की इच्छा नहीं करता और न सोच करता है न आपदा के समय घबराता है वही पण्डित है ॥ १० ॥

जो निश्चय किये हुए कार्यों को सदा करता रहता है और किसी प्रकार से उन कार्यों को नहीं छोड़ता और जो इन्द्रियों को जीतता है वही पण्डित है ॥ ११ ॥

जो आर्य कर्म और ऐश्वर्य के बढ़ानेवाले कर्मों को करते रहते हैं और अच्छे कर्मों की निन्दा नहीं करते वही पंडित श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

हे राजन् जिसको न सनमान से बहुत आनन्द और न अपमान से दुःख होता है और जो गंगा जी के जल के समान गंभीर है वही पंडित है ॥ १३ ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय का तत्व सब कर्मों का यत्न और सब मनुष्यों के सुख का उपाय जानता हो वही पंडित है ॥ १४ ॥

जो सत्यवक्ता, मृदुभाषी, बलवान्, तेजवान्, बहुत शास्त्रों का श्रोता और शीघ्र कथा कहनेवाला हो वही पंडित है ॥ १५ ॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्य्यमर्य्यादः पंडिताख्यां लभेत सः ॥ १६ ॥
अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चा कर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यतेबुधैः ॥ १७ ॥
स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥ १८ ॥
अकामान्कामयतियःकामयानान्परित्यजेत् ।
लवन्तश्च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढ चेतसम् ॥ १९ ॥
अमित्रं कुरुते मित्रं मित्र द्वेष्टि हिनस्ति च ।
कर्मचारभते दुष्टं तमाहुर्मूढ चेतसम् ॥ २० ॥

जिसके कथन में ऐसी शक्ति हो कि जिसको सुन कर या पढ कर या जान कर मनुष्य बुद्धिमान होजावे, जो आर्य धर्म अर्थात् सनातन धर्म का विरोधी और मर्यादा को तोडनेवाला न हो वही पंडित है ॥ १६ ॥

जिसने कोई धर्म शास्त्र नहीं सुना, जिसका हृदय शून्य, जिसको शत्रु मित्र का ज्ञान नहीं, जिसकी तृष्णा भारी और जिसको कर्म करने में कुछ प्रेम नहीं उसको पंडित मूर्ख कहते हैं ॥ १७ ॥

जो अपने अर्थ का ध्यान नहीं रखता, दूसरों को झूठी बातों पर चलता है और जो झूठी मित्रता करता है वह भी मूर्ख है ॥ १८ ॥

जो हानि दायक कार्यों को करता और लाभ दायक कार्यों को त्यागता और जो निर्बल होकर बलवान से वैर करता है उसको भी मूर्ख कहते हैं ॥ १९ ॥

जो अयोग्य मित्रों से मित्रता करता, जो योग्य मित्रों को हानि पहुंचाता, और जो खोटे काम करता है वह भी मूर्ख है ॥ २० ॥

संसार प्रति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।
चिरंकरोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥ २१ ॥
श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति देवतानि न चार्चति ।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढ चेतसम् ॥ २२ ॥
अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढ चेता नराधमः ॥ २३ ॥
परं क्षिपति दोषेण बत्तंमानः स्वयं तथा ।
यश्च कुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥ २४ ॥
आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थं परिवर्जितम् ।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढ बुद्धिरिहोच्यते ॥ २५ ॥

जो कर्म संसार के दिखाने के अर्थ करता है और कर्म करने में देर करके फल शीघ्र चाहता है वह भी मूढ़ है ॥ २१ ॥

जो पितरों अर्थात् बड़ों को श्रद्धा पूर्वक तृप्त नहीं करता, न देव अर्थात् विद्वानों की यथायोग्य सेवा करता है, और न योग्य मित्र से प्रेम रखता है वह भी मूर्ख कहाता है ॥ २२ ॥

जो बिना बुलाये जाय और बिना पूछे बहुत बकवाद करे, और जो अविश्वासी पुरुष का विश्वास करे उसको मूढ़ और अधम कहते हैं ॥ २३ ॥

जो अपने दोषों को नहीं देखता और आप वैसाही बुरा कर्म करता है, दूसरे के थोड़े दोष पर बहुत दोष लगाता है जो बिना प्रयोजन क्रोध करता है वह भी मूढ़ है ॥ २४ ॥

जो धर्म और अर्थ के बिना अपने बल को बड़ा जान कर खोटे कर्म और न प्राप्त होने योग्य वस्तु की इच्छा करता है उसको मूढ़ अबुद्धिमान कहते हैं ॥ २५ ॥

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्चशून्य मुपासते ।
कदर्यं भजतेयश्च तमाहुर्मूढ चेतसम् ॥ २६ ॥
एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम् ।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः कोन्वृशंसतरस्ततः ॥ २७ ॥
एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्र मुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते ॥ २८ ॥
एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टाहन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥ २९ ॥
एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु ।
पञ्चजित्वा विजित्वाषट् सप्तहित्वासुखीभव ॥ ३० ॥

जो सुनता नहीं उसको उपदेश और असत् मनुष्यों का सत्कार करता है, और जो उसकी सेवा करके धन का लाभ चाहता है वह भी मूर्ख है ॥ २६ ॥

जो पुरुष अपने कुटुम्बियों को त्याग कर अकेला भोजन करता और अकेला ही सम्पूर्ण वस्तु को भोगता है उस पुरुष से निर्लज्ज संसार में कोई नहीं ॥२७॥

अकेला ही पुरुष पाप का कर्त्ता और भोगनेवाला होता है उसके साथी सब छूट जाते हैं ॥ २८ ॥

मारनेवाले पुरुषों में जो सर्दार होता है वही मारनेवाला और पाप का भागी होता है, चाहे वह अपने हाथ से मारे वा नहीं, बाण एक ही को मारता है और कभी नहीं भी मारता परन्तु बुद्धिमान की बुद्धि राजा सहित राज्य का नाश करदेती है ॥ २९ ॥

अपनी बुद्धि से मित्र और शत्रु को जान साम दाम दंड भेद इन चार उपायों से मित्र उदासीन और शत्रुओं को अपने वश में कीजिये, इन्द्रियों को वश में कर संधि और विग्रहादि छः अङ्गों को जानकर स्त्री जुआ शिकार, मदिरा कठोर वचन दंड और प्रयोजन इन सात कर्मों को छोड कर सुखी हूजिये ॥ ३० ॥

एकं विष रसो हन्ति शस्त्रे णैकश्च बध्यते ।
सराष्ट्रं सप्रजंहन्ति राजानं मंच विप्लवः ॥ ३१ ॥
एक क्षमावतां दोषा द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ३२ ॥
सोस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमाहि परमं धनम् ।
क्षमागुणोह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥ ३३ ॥
क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमयाकिंन साध्यते ।
शान्ति खड्गःकरे यस्य किंकरिष्यति दुर्जनः ॥ ३४ ॥
अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोप शाम्यति ।
अक्षमावान् परंदोषैरात्मानमेव योजयेत् ॥ ३५ ॥

एक विष से संपूर्ण रस बिगड़जाता है, हथियार से एक ही मनुष्य मारा जाता है परन्तु राजा के खोटे मन्त्रियों की सम्मति अथवा अपनी ही खोटी सम्मति से श्रीमानों का भी प्रजा सहित नाश होता है ॥ ३१ ॥

क्षमावान पुरुषों में केवल यही एक दोष है कि उनको बहुधा लोग असमर्थ-वान् जानते हैं ॥ ३२ ॥

क्षमावान पुरुषों में सज्जन पुरुष कोई दोष नहीं मानते क्योंकि चाहे मनुष्य सामर्थवान हों या असमर्थवान, क्षमा ही उनका परम धन और भूषण है ॥ ३३ ॥

क्षमा से सम्पूर्ण जगत वश में और संपूर्ण पदार्थ प्राप्त होजाते हैं क्षमा रूपी खडग जिनके हाथ में है उनका कोई दुष्ट मनुष्य क्या कर सकता है ॥३४॥

क्योंकि जब अग्नि के पास घास फूस नहीं होता तो वह आप शांति हो-जाती है, जिनको क्षमा नहीं वह संपूर्ण दुखों में पडे रहते हैं अर्थात् क्रोधी मनुष्य अपने दोषों से आपही दुख में पड़ा रहता है ॥ ३५ ॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥ ३६ ॥
द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाप्ययोद्वारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ ३७ ॥
द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन् परुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥ ३८ ॥
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्यय कारिणौ ।
स्त्रियः कामितकामिन्योलोकः पूजितपूजकः ॥ ३९ ॥
द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीर परिशोषणौ ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्य नीश्वरः ॥ ४० ॥

जिसने क्षमा को धारण किया उसने संपूर्ण धर्मों को धारण किया क्योंकि क्षमा ही परम शांति की देनेवाली है, अकेली विद्या ही परम तृप्ति, और अहिंसा ही परम सुख का कारण है ॥ ३६ ॥

क्षमावान् और अहिंसक पुरुष इस पृथ्वी पर राज करते हैं जैसे सांप इस संसार में बिलास करते हैं राजा योद्धा और ब्राह्मण आदि सब उनकी आज्ञा को मानते हैं ॥ ३७ ॥

जो पुरुष इन दोनों कर्मों से रहित हैं वह इस संसार में शोभा नहीं पाते ऐसे असज्जन पुरुष मानने योग्य नहीं ॥ ३८ ॥

क्षमावान् और अहिंसक यही दोनों दूसरे के कामों को करसकते हैं और वे स्त्री पुरुषों के बीच में इस संसार में पूजनीय होते हैं ॥ ३९ ॥

अहिंसक और अक्षमावान् दोनों पुरुष तेज कांटे शरीर के नाश करनेवाले हैं और यह अधम जिस काम के करने की इच्छा करते हैं वह काम बिगड जाता है ॥ ४० ॥

द्वाविमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्य्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥ ४१ ॥
द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्थौ परि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमयायुक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥ ४२ ॥
न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रेप्रतिपत्तिश्च पात्रे चा प्रतिपादनम् ॥ ४३ ॥
द्वावम्भसि विनि क्षेप्यौ गाढं बद्ध्वा गलेशिलाम् ।
धनिनं चा प्रदातारं दरिद्रं चा तपस्विनम् ॥ ४४ ॥
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्य्य मंडल भेदिनौ ।
परिव्राड् योग युक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ४५ ॥

जो गृहस्थ होकर कुछ कर्म न करे और संन्यासी होकर काम करे इन दोनों विपरीत काम करनेवालों को इस संसार में शोभा नहीं प्राप्त होती ॥ ४१ ॥

जो सामर्थवान् होकर क्षमा करे और दरिद्री होकर दान दे तो दोनों स्वर्ग में राज्य करते हैं ॥ ४२ ॥

न्याय से प्राप्त किया हुआ धन दो ही प्रकार से नाश को प्राप्त होता है अर्थात् अयोग्य को देने और योग्य को न देने से, जो धनी होकर पुण्य और कंगाल होकर तप न करे तो इन दोनों के गले में भारी शिला बांधकर [में डुबो देना योग्य है ॥ ४३, ४४ ॥

क्षमावान् और अहिंसक ही समस्त पृथ्वी पर राज्य करते हैं, वही परम राजा और योग्य पुरुष हैं, वही रण में शत्रु के सामने से नहीं हटते अर्थात शत्रुओं को जीतते हैं ॥ ४५ ॥

त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेददिदो विदुः ॥ ४६ ॥
त्रिविधाः पुरुषा राजन् उत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ४७ ॥
हरणञ्च परस्वानां परदाराभिमर्षणम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषा भयप्रदाः ॥ ४८ ॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत् ॥ ४९ ॥
भक्तञ्च भजमानञ्च तवास्मीति च वादिनम् ।
त्रीनेताञ्छरणं प्राप्तान् विषमेपि न संत्यजेत् ॥ ५० ॥
चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्या-
न्याहुः पंडितस्तानि विद्यात् ।
अल्पप्रज्ञैः सहमन्त्रं न कुर्य्यान्न
दीर्घसूत्रैरलसैश्चारणैश्च ॥ ५१ ॥

वेद के जाननेवाले पण्डितों ने श्रेष्ठ मध्यम और कनिष्ट यह तीन भेद मनुष्यों के माने हैं, और इनके भी उत्तम मध्यम और नीच यह तीन भेद हैं, इन तीनों को यथायोग्य कार्य सौंपना चाहिये ॥ ४६, ४७ ॥

दूसरों का धन छीन लेना, अन्य की स्त्रियों से विषय करना, अपने मित्रों को त्याग देना, इन तीन दोषों से मनुष्य का नाश होजाता है ॥ ४८ ॥

काम क्रोध लोभ यही तीनों नर्क के दाता और आत्मा के नाशक हैं इसलिये इन तीनों को सदा त्यागना योग्य है ॥ ४९ ॥

भक्त सेवक और अपने शरणागत आये हुए इन तीनों को महादुःख के समय में भी न त्यागना चाहिये ॥ ५० ॥

कुबुद्धियों और खुशामदियों की सम्मति, आलसी और शीघ्रप्रसन्न होनेवाले पुरुषों की मित्रता से बुद्धिवान और श्रीमानों को अलग ही रहना चाहिये ॥ ५१ ॥

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु
श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थ धर्मे ।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा
दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥ ५२ ॥

चत्वार्य्याह महाराज साधुलक्षानि बृहस्पतिः ।
पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोधमे ॥ ५३ ॥

देवतानाञ्च सङ्गत्य मनुभावञ्च धीमताम् ।
विनयं कृत विद्यानां विनाशं पाप कर्मणाम् ॥ ५४ ॥

चत्वारि कर्मण्य भयङ्कराणि
भयं प्रयच्छन्त्य यथा कृतानि ।
मानाग्निहोत्र मुतमान मौनं
मानेनाधीत मुतमान यज्ञः ॥ ५५ ॥

ऐश्वर्यवान् राजा जो गृहस्थी धर्म में है वृद्धपुरुष कुलीन मित्र अर्थात् धर्म युक्त इनको कभी न त्यागे चाहे वे निरधन हों, विधवा बहिन और संतान ये शीघ्र यश के दाता हैं ॥ ५२ ॥

बृहस्पति कहते हैं कि बुद्धिमानों से मित्रता (देव) विद्वानों का समागम करना, चतुर पुरुषों से विनय और पापियों अर्थात् अधर्मियों को दंड देने से मनुष्य को यश प्राप्त होता है, ऐसा ही इन्द्र ने (दिवे) विद्वानों से कहा है ॥ ५३, ५४ ॥

अग्निहोत्र करना, मौन रहना अर्थात् मिथ्या भाषण न करना, विद्या पढ़ना और नाना प्रकार के यज्ञों के करने से मनुष्य को सुख प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्य्याः प्रयत्नतः ।
पिता माता निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥ ५६ ॥
पञ्चैव पूजयन् लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥५७॥
पङ्क्त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यति ।
मित्राण्यमित्र मध्यस्था उपजीव्योपजीविन ॥ ५८ ॥
पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेक मिन्द्रियम् ।
ततोऽस्य स्रवतिप्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ५९ ॥
षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूति मिच्छता ।
निद्रा तद्रीर्भयं क्रोध आलस्यं दीर्घ सूत्रता ॥ ६० ॥

पंचयज्ञ अर्थात् परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना, पिता माता और गुरू का सत्कार और आत्मा अर्थात् अपने शरीर की रक्षा करना यह कर्म यथायोग्य मनुष्यों को नित्यप्रति करना चाहियें ॥ ५६ ॥

देवता (विद्वान्) भिखारी पितृ (बड़े मनुष्य) और अतिथि इन पांचों का सत्कार करने से संसार में बहुत यश प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

चाहे मनुष्य उत्तम मध्यम वा नीच और चाहे धनवान वा निर्धन हो यह यश उसके साथ ही जहां २ वह रहता है तहां २ जाता है ॥ ५८ ॥

यदि पांच इन्द्रियों में से एक भी इन्द्री बलवान हो तो वह मनुष्य की बुद्धि को ऐसे नष्ट करदेती है जैसे एक छेद से संपूर्ण पात्र का जल निकल जाता है ॥ ५९ ॥

निद्रा जमुहाई भय क्रोध आलस्य ढीलापन यह छः दोष मनुष्यों के संपूर्ण ऐश्वर्य को शीघ्र नष्ट करदेते हैं इसलिये इनको त्यागना योग्य है ॥ ६० ॥

षड़िमान् पुरुषोजह्याद्विन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्यमन धीयान मृत्विजम् ॥ ६१ ॥
अरक्षितारं राजानं भार्य्यां चा प्रियवादिनीम् ।
ग्राम कामञ्च गोपालं बन कामञ्च नापितम् ॥ ६२ ॥
षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दान मनालस्य मनसूया क्षमा धृतिः ॥ ६३ ॥
षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्त्तः मन वेक्षणात् ।
गावः सेवा कृषिर्भार्य्या विद्या ह्यषलसङ्गतिः ॥ ६४ ॥
षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् ।
आचार्य्यं शिक्षिताःशिष्याःकृतदाराश्चमातरम् ॥ ६५ ॥
नारीं विगत कामञ्च कृतार्थाश्च प्रयोजनम् ।
नावंविस्तीर्णं कान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम् ॥ ६६ ॥

बिना शिक्षा करनेवाले गुरू, मूर्ख पुरोहित, अन्याई राजा, कुकर्मी स्त्री, गांव के रहनेवाले अहीर, और बन के रहनेवाले नाई इन से सज्जन पुरुषों को कुछ संम्बध न रखना चाहिये, जैसे कि कोई सज्जन पुरुष समुद्र में टूटी नाव से संबंध नहीं रखता ॥ ६१, ६२ ॥

सत्य, दान, सन्मान, शुद्धभाव, क्षमा, और धीरज इन छः गुणों को मनुष्य कभी न त्यागे ॥ ६३ ॥

गऊ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या, और ज्ञान यह छः बेमन से करने से शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य गुरू, शिक्षक, शिष्य, धर्म, स्त्री, माता, पिता की यथायोग्य सेवा करता है उसको सदा सुख मिलता है क्योंकि यह सब परिलोक के उपकारी हैं ॥६५॥

स्त्री काम रहित पुरुष का, रोगी वैद्य का, घबई पर चलनेवाला नाव का, और कृतार्थी (मतलबी) प्रयोजन सिद्ध होजाने पर अपमान करते हैं ॥ ६६ ॥

आरोग्य मानृण्य मविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सहसंप्रयोगः ।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीत वासः
षड्जीव लोकस्य सुखानि राजन् ॥ ६७ ॥

ईर्षी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्य दुःखिताः ॥ ६८ ॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्य्या प्रिय वादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थ करी च विद्या
षड्जीव लोकस्य सुखानि राजन ॥ ६९ ॥

षण्णामात्मनि नित्याना सैश्वर्य्यं योऽधिगच्छति ।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियैः ॥ ७० ॥

आरोग्य रहना, ऋणी न होना, परदेश में अधिक न रहना, सत् पुरुषों का सत्संग करना, अपने वृत्ति की आजीविका और निर्भय होकर रहना यह जीव के लिये इस लोक में सुख हैं ॥ ६७ ॥

जो ईर्षी, लज्जा, असंतोष क्रोध, नित्य ही भय अर्थात् शंका करता है और दूसरे के आधीन खाता है अर्थात् निकम्मा है यह छः पुरुष नित्य ही दुखी रहते हैं ॥ ६८ ॥

द्रव्य का आगमन (धन का प्राप्त होना), नित्य आरोग्य रहना, प्यारे बचन कहनेवाली स्त्री, आधीन रहनेवाला पुत्र, धन के देनेवाली विद्या यह छः बातें मनुष्य को सुख की दाता हैं ॥ ६९ ॥

इन छः वासनाओं की इच्छा सब मनुष्य मात्र को रहती है परन्तु यह उसी जितेन्द्री धर्मात्मा को प्राप्त होती हैं जो कभी पाप की वासना मन से नहीं करता और न वह पापियों का संग करता है ॥ ७० ॥

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोप लभ्यते ।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः ॥ ७१ ॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः ।
राजाविवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥ ७२ ॥
सप्त दोषाः सदा राज्ञाहातव्या व्यसनोदयाः ।
प्रायशोयैर्विनश्यन्ति कृत मूला अपीश्वराः ॥ ७३ ॥
स्त्रियोऽक्षामृगया पानं वाक् पारुष्यञ्च पञ्चमम् ।
महच्च दण्ड पारुष्य मर्थं दूषण मेवच ॥ ७४ ॥
अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।
वर्त्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव सुसुखान्यपि ॥ ७५ ॥
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ।
पुत्रेण च परिष्वङ्ग सन्निपातश्च मैथुने ॥ ७६ ॥
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः ।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जन संसदि ॥ ७७ ॥

चोर मतवाले मालिश से, वैद्य रोगियों से, स्त्री कामियों से, यज्ञ कराने वाले यजमान से, राजा झगडालू पुरुषों से, और पंडित मूर्खों से सदा आजीविका प्राप्त करते हैं ॥ ७१, ७२ ॥

स्त्री, आखेट, मद्यपान, कठोर वचन, जुआ, कठिन दंड, अर्थ में दूषण (प्रयोजन का नाश) यह सात दोष सदा त्यागने योग्य हैं, क्योंकि यह दुःख के दाता हैं और इनसे बंश सहित श्रीमानों का ऐसे नाश होजाता है जैसे जड कटने से वृक्ष का ॥ ७३, ७४ ॥

मित्रों का समागम, बहुत धन का प्राप्त होना, पुत्र का मिलना, मैथुन में सन्यपात होना, समय पर मीठी बातें करना, अपने बंश में उन्नति होना, अभिप्राय का प्राप्त होना, सभा में बडाई होना, यह आठ गुण आनन्द के देनेवाले हैं, जिन मनुष्यों में विद्यमान है वही सुखी हैं ॥ ७५, ७६, ७७ ॥

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्च साक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः ॥ ७८ ॥
दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोधतान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥ ७९ ॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्येत पण्डितः ॥ ८० ॥

यः काममन्यु प्रजहाति राजा
पात्रे प्रतिष्ठापयते धनञ्च ।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी
तं सर्व लोकः कुरुते प्रमाणम् ॥ ८१ ॥

इस शरीर में नव द्वार तीन स्तंभ पांच प्राण और एक जीव मौजूद हैं जो इनको जाने वह विद्वान् है ॥ ७८ ॥

नोट—इस शरीर रूपी घर में नाक, कान, आंख, जीभ, खाल, अहंकार, बुद्धि, मन और स्थूल शरीर के यह नव द्वार हैं, अविद्या काम और कर्म करना यह तीन खम्भे हैं, शब्द स्पर्श रस गन्ध और रूप यही पांच साक्षी और जीव इसमें रहनेवाला है।

मतवाला, प्रमतवाला (नशे का पीनेवाला), उन्मत्त (बेहोश), थका हुआ, क्रोधी, भूखा, शीघ्रता करनेवाला, लोभी, डरपोक, कामी यह दश मनुष्य धर्म को नहीं जानते इसलिये बुद्धिमान इनका कभी संग न करे ॥ ७९, ८० ॥

जो श्रीमान् काम और क्रोध को त्याग कर योग्य अर्थात् सत् पुरुषों को धन देते है, जो सब विषयों के विशेष भाव को जानते और जो अपने कार्यों को शीघ्रता से करते हैं उनका सब लोग सत्कार करते हैं ॥ ८१ ॥

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्
विज्ञात दोषेषु दधाति दण्डम् ।
जानाति मान्यांश्च तथा क्षमाञ्च
तं तादृशं श्रीर्जषते समग्रा ॥ ८२ ॥

सुदुर्बलं नावजानाति कश्चि-
द्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धि पूर्वम् ।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः
काले च यो विक्रमते स धीरः ॥ ८३ ॥

प्राप्यापदं न व्यथेत कदाचि
दुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
दुःखञ्च काले सहते महात्मा
धुरंधरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥ ८४ ॥

उन श्रीमानों को जो विश्वास योग्य मनुष्यों को जानते, दोषों को देख कर दंड देते, सब कर्मों का प्रणाम जानते और क्षमा करते हैं, समस्त लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ ८२ ॥

जो दुर्बल का अपमान और बलवान से लड़ाई नहीं करता बुद्धि के युक्त शत्रु के पास जाता और समय पर पराक्रम करता है उसको धीर्यवान् कहते हैं ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य आपदा में दुखी नहीं होते, परन्तु सावधान होकर उसके दूर करने का उपाय करते हैं और समय पर दुख भी सहलेते हैं वही महात्मा और धुरंधर होते हैं और वही शत्रुओं को भी जीत सकते हैं ॥ ८४ ॥

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः
पापैः सन्धिं परदाराभिमर्षम् ।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं
न सेवते यश्च सुखी सदैव ॥ ८५ ॥
न संरम्भेणारभते त्रिवर्गं
माकारितः शंसति तत्त्वमेव ।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं
नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढ ॥ ८६ ॥
योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च
न दुर्वलः प्रतिभाव्यं करोति ।
नात्याह किञ्चित् क्षमते वै विवादं
सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम् ॥ ८७ ॥

जो निष्प्रयोजन कोई काम नहीं करता, न पापियों से मिलता, न पराई स्त्री का स्पर्श करता, न कपट चोरी चुगली करता, और न मदिरा आदि नशे को पीता है, वही सदैव सुखी होता है ॥ ८५ ॥

जो पुरुष क्लेश से त्रिवर्ग अर्थात् धर्म अर्थ और काम को नहीं करता, बिना पूछे तत्व ज्ञान नहीं कहता, मित्रों से विवाद नहीं करता, और निरादर करने पर भी कोप नहीं करता, उसी को बुद्धिमान कहते हैं ॥ ८६ ॥

जो पुरुष निन्दा करने पर भी दया और विवाद को सदा क्षमा करता है दुर्बल का तिरस्कार और बडी बात नहीं कहता, उसकी सब जगह प्रशंसा होती है ॥ ८७ ॥

यो नोद्धतं कुरुतेजातु वेशं
न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित्
प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि ॥ ८८ ॥
न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्य कार्य्यं
तमार्य्यं शीलं परमाहुरार्य्याः ॥ ८९ ॥
न स्वे सुखे व कुरुते प्रहर्षं
नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्य्यशीलः ॥ ९० ॥
देशाचारान् समयान् जाति धर्मान्
बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्रापि गतः सदैव
महाजनस्याभिपत्यं करोति ॥ ९१ ॥

जो पुरुष भयंकर रूप नहीं बनाता, पुरुषार्थ का घमंड करके औरों को नहीं धमकाता, क्रोध से भी कड़ा वचन नहीं कहता वह सबका प्यारा बनारहता है ॥८८॥

जो पुरुष और पुरुषों से बैर, हिंसा और आपत्ति पड़ने पर भी अकार्य अर्थात् खोटे कर्म नहीं करता और जो बेहोश भी नहीं होता उसको आर्य लोग भी परम आर्य कहते हैं ॥ ८९ ॥

जो मनुष्य अपने सुख और दूसरों के दुख में हर्ष, और वस्तु देकर पश्चात्ताप नहीं करता, उसी महात्मा को सज्जन लोग आर्य कहते हैं ॥ ९० ॥

जो पुरुष देशाचार, समय और जाति धर्मों को जानता है वही विद्वान् सज्जनों की सभा को सुशोभित करता और मनुष्यों में प्रतिष्ठित होता है ॥९१॥

दम्भं मोहं मत्सरं पाप कृत्यं
राजद्विष्टं पैशुन्यं पूगवैरम् ।
मोत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं
यः प्रज्ञावान् वर्ज्जयेत्स प्रधानः ॥ ९२ ॥

दमं शौचं दैवतं मङ्गलानि
प्रायश्चित्तान्विविधाल्लोकवादान् ।
एतानि यः कुरुते नैत्यिकानि
तस्योत्थानं देवता धारयन्ति ॥ ९३ ॥

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः
समै सख्यं व्यवहारं कथाश्च ।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति
विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥ ९४ ॥

जो पुरुष बुद्धिवान् और प्रधान अर्थात् योग्य हैं वह दम्भ अर्थात् अभिमान मोह, ईर्षा, पाप कर्म, राजा से वैर चुगुली, मत्त, उन्मत्त और दुर्जनों से वाद नहीं करते ॥ ९२ ॥

जो पुरुष दम, शौच, देवकार्य अर्थात् विद्वानों की यथावत पूजा, मंगल कार्य, प्रायश्चित्त को करते, और बहुत प्रकार के शास्त्रों को अवलोकन कर रहता है उनकी सज्जन पुरुषों में अच्छे प्रकार प्रतिष्ठा होती है ॥ ९३ ॥

जो पुरुष बराबरवालों से विवाह, मित्रता और व्यवहार करता और नीचों से नहीं करता है और जो पुरुष गुणों को देख कर कार्य करते हैं वही नीतिवान् है ॥ ९४ ॥

मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।
ददात्यमित्रेष्वभियाचितः स्वं
तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥ ९५ ॥
चिकीर्षितं विप्रकृतञ्च यस्य
नान्य जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित् ।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च
नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः ॥ ९६ ॥
यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः
सत्यो मृदुर्मानकृच्छ्रद्दभावः ।
अतीव सत्त्वायते क्षाति मध्ये
महामणिर्जात्य इवं प्रसन्नः ॥ ९७ ॥
य आत्मनापत्रपते भृशं नरः
स सर्व लोकस्य गुरुर्भवत्युत ।
अनन्त तेजाः सुमनाः समाहितः
स तेजसा सूर्य्य इवावभाषते ॥ ९८ ॥

जो पुरुष आश्रय वालों को बांटकर थोड़ा खाता थोड़ा सोता और बहुत कर्म करता है, और जो अमित्रों अर्थात् बैरियों को भी मांगने पर धन देता है उसका सदा कल्याण होता है ॥ ९५ ॥

जिसके गुप्त मंत्र को कोई नहीं जानता, विचार करके कार्य करता है उसका छोटा कार्य भी कभी नाश नहीं होता और न वह कभी अनर्थ में पड़ता है ॥९६॥

जो पुरुष संपूर्ण जीवों का सुख चाहता, सत्य बोलता, दूसरों का मान करता और प्रसन्न चित्त है वह संपूर्ण मनुष्यों में ऐसे प्रकाशित होता है जैसे महा मणि ॥९७॥

जो मनुष्य अपने कर्मों को देख कर आप ही लज्जित होता है वही सम्पूर्ण लोक का गुरु होने योग्य है और वही सूर्य के समान संसार में प्रकाशित होता है ॥९८॥

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
अपृष्टस्तस्य तद्ब्रूयादात्मा नेच्छेत् पराभवम् ॥ ९९ ॥
मिथ्योपेतानि कर्माणि सिद्ध्युर्यानि भारत ।
अनुपाय प्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ १०० ॥
तथैव योग विहितं न सिध्येत् कर्म यन्नृप ।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥ १०१ ॥
अनुबन्धानवेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु ।
सम्प्रधार्य्यं च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥ १०२ ॥
अनुबन्धञ्च संप्रेक्ष्य विपाकञ्चैव कर्मणाम् ।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥ १०३ ॥
यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ।
कोषे जनपदे दण्डे न स राज्येऽव तिष्ठते ॥ १०४ ॥
यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति ।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्य मधि गच्छति ॥ १०५ ॥

जिसकी भलाई चाहे उसको बिना पूछे भी शुभ अशुभ प्रिय अप्रिय सब प्रकार का उपदेश करदे ॥ ९९ ॥

जो कार्य झूठ बोलने से उपाय या बिना उपाय सिद्ध हों उनको कदापि न करना चाहिये, इसी प्रकार उत्तम अर्थात् प्रयोजन के देनेवाले कार्यों को जबतक सिद्धि न हों यत्न पूर्वक करता रहे और दोष युक्त कर्मों का दोष सदा त्यागता रहे, और सावधानी से कार्य करे बहुत शीघ्रता से न करे ॥ १००, १०१, १०२ ॥

धीर पुरुष कर्मों का फल दोष और अपना समर्थ देख कर कार्य करते हैं ॥ १०३ ॥

जो मूर्ख पुरुष स्थान वृद्धि के नाश और धन देश दंड को नहीं जानता वह श्रीमान होने के योग्य नहीं, और जो इन प्रमाणों और धर्म अर्थ ज्ञान को जानता है वही बुद्धिमान श्रीमान् होने के योग्य है ॥ १०४, १०५ ॥

न राज्यं प्राप्त मित्येव वर्त्तितव्यमसांप्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥ १०६ ॥
भक्ष्योत्तम प्रतिच्छन्नं मत्स्यो वांडशमायसम्।
लेभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमपेक्षते ॥ १०७ ॥
यक्कक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्चयत्।
हितञ्च परिणामेयत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ १०८ ॥
वनस्पतरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसंतेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥ १०९ ॥
यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥ ११० ॥

राज्य को पाकर सावधानी से पालन करना चाहिये और जो अनीति अर्थात् अन्याय करते हैं उनकी लक्ष्मी का ऐसे शीघ्र नाश होजाता है जैसे वृद्ध अवस्था में रूप का नाश होजाता ॥ १०६ ॥

जैसे मछली उत्तम भक्ष्य में लपिटे हुए कांटे को खाकर अपने प्राणों को नाश कर देती है वैसे ही जो मनुष्य बिना विचारे कार्य करते हैं उनका भी नाश होजाता है ॥ १०७ ॥

जो खाने योग्य और पचने पर सुख दायक हो बुद्धिमान पुरुष उसी को खावें ॥ १०८ ॥

जो मनुष्य कच्चे फलों को तोड लेता है उसको रस और स्वाद नहीं मिलता उनके बीज का भी नाश होजाता है ॥ १०९ ॥

जो पके फल तोड़ता है उसको रस और स्वाद प्राप्त होता है और बीज भी मिलता है कि जिस बीज से फिर वृक्ष और फल प्राप्त होते हैं और यही क्रम चला जाता है ॥ ११० ॥

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ १११ ॥
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥ ११२ ॥
किं नु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्य्याद्वा पुरुषो न वा ॥११३॥
प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्त्तारमिच्छन्ति षण्डं पतिमिवस्त्रियः ॥११४॥
कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलम् ।
क्षिप्रमारभते कर्त्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥ ११५ ॥
ऋजुः पश्यति यः सर्वं चक्षुषा प्रणिवन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥ ११६ ॥

जैसे भौंरा फल फूलों की रक्षा करके उसके रस को चूसता है परन्तु वृक्ष की जड़को नहीं काटता, और माली वृक्षों से नाना प्रकार के फल और फूल तोड़ लेता है परन्तु वृक्षों के बीज का नाश नहीं करता, इसी प्रकार मनुष्यों को प्रथम आदि अंत, हानि लाभ और धर्म अधर्म देखकर प्रत्येक कार्य आरंभ करना चाहिये ॥ ११२, ११३ ॥

जिस मनुष्य की प्रसन्नता और क्रोध से कुछ हानि लाभ न हो उसकी सेवा करना व्यर्थ है जैसे नपुंसक मनुष्य की स्त्री का शृङ्गार ॥ ११४ ॥

बुद्धिवान् पुरुष ऐसे कार्यों को जिन में थोड़ा परिश्रम और बहुत फल है शीघ्र ही आरम्भ करदेते हैं क्योंकि ऐसे कार्यों में विघ्न नहीं होता ॥ ११५ ॥

जो पुरुष मौन होकर भी कोमल स्वभाव और प्यारी आंख से देखता है उससे संपूर्ण मनुष्य प्रसन्न रहते हैं ॥ ११६ ॥

गुरु विरजानन्द दण्डी
पु परिग्रहण क्रमांक 2754
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनु प्रसीदति ॥११७॥

यस्मात्त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ।
सागरांतामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥ ११८ ॥

पित्र्यं पैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन तेजसा ।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥ ११९ ॥

धर्ममाचरतो राज्ञः सन्निश्चरितमादितः ।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्द्धते भूति वर्द्धिनी ॥ १२० ॥

अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मञ्चानुतिष्ठतः ।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौचर्माहितं यथा ॥ १२१ ॥

जो पुरुष मन वाणी कर्म और नेत्र से संसार को प्रसन्न करता है उसको भी सब जगत् प्रसन्न करता है ॥ ११७ ॥

जिस पुरुष से जीव ऐसे डरते हैं जैसे बाघ से मृग, तो वह समस्त पृथ्वी का राजा होकर भी शीघ्र नाश होजाता है ॥ ११८ ॥

अन्यायी अर्थात् अधर्मी मनुष्य को बाप दादे का राज्य या धन मिलने पर भी ऐसे शीघ्र नाश होजाता है जैसे पवन से बादल उड़जाते हैं अर्थात् नाश होजाते है ॥ ११९ ॥

धर्मज्ञ अर्थात् सुकर्म करनेवाले श्रीमान् नाना प्रकार की उन्नति सहित समस्त पृथ्वी का राज करते हैं ॥ १२० ॥

जो मनुष्य धर्म को त्याग कर अधर्म को धारण करता है उसके संपूर्ण वैभव का ऐसे नाश होजाता है जैसे चमड़ा अग्नि पर रखने से नाश होजाता है अर्थात् जलजाता है ॥ १२१ ॥

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने ।
स एव यत्नः कर्त्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ १२२ ॥
धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ १२३ ॥
अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥ १२४ ॥
गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ १२५ ॥
पर्ज्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥ १२६ ॥

जो यत्न पराये राज्य के नाश करने में कियाजाता है वही यत्न अपने राज्य के पालन करने में करना योग्य है ॥ १२२ ॥

धर्म से प्राप्त किये हुए राज्य और धन का कभी नाश नहीं होता इसलिये श्रीमानों को सदा राज्य की धर्म ही से पालना करनी चाहिये ॥ १२३ ॥

जो मनुष्य उन्मत्त अर्थात् मतवाला होकर बकता और बालभाव से बोलता हो उससे भी श्रीमान् सार निकाले जैसे पत्थर से सोना निकालते हैं ॥ १२४ ॥

गऊ सूंघने से ब्राह्मण वेदों से राजा दूतों से जानते हैं, और सब आंखों से देखते हैं ॥ १२५ ॥

पशुओं की मेघों से, राजा की मंत्री से, स्त्री की पति से, ब्राह्मण की वेदों से रक्षा होती है ॥ १२६ ॥

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ १२७ ॥
मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ।
अभीक्ष्णं दर्शनङ्गाश्च स्त्रियो रक्षेत् कुचेलता ॥ १२८ ॥
न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।
अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥१२९॥
य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्य्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥ १३० ॥
अकार्य्यं करणाद्भीतः कार्य्याणाञ्च विवर्जनात् ।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत् पिबेत् ॥१३१॥

धर्म की सत्य से, विद्या की योग से, रूप की उबटन से, कुल की वृत्ति अर्थात् आचरण से, धन की आदर से, घोड़ों की फिराने से, गऊ की नित्य देखने से, और स्त्री की शुभ आचरणों से रक्षा होती है ॥ १२७, १२८ ॥

मेरा यह सिद्धांत है कि वृत्त हीन अर्थात् बुरे आचरण वाले पुरुष के कुल का कुछ प्रमाण नहीं होता, क्योंकि नीच होकर भी अच्छे कर्म करे उसकी प्रशंसा होती है ॥ १२९ ॥

जो पराये द्रव्य, कुल, रूप, बल, सुख, सौभाग्य और सत्कार को देख कर ईर्षा करता अर्थात् जलता है वही सदा दुखी रहता है ॥ १३० ॥

जो काम के आरम्भ से प्रथम ही भय खाकर अपने कार्यों को छोड़देते हैं वह महा मूर्ख हैं, इसी प्रकार जिस कार्य से हानि हो उसे कदापि न करे और अपनी सम्मति को भी प्रत्येक पर प्रकाश न करे ॥ १३१ ॥

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनोमदः ।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥ १३२ ॥
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम् ।
गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः ॥ १३३ ॥
असताञ्चगतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः ।
जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता ।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥ १३४ ॥
शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।
त तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभि ॥ १३५ ॥
अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम् ।
उत्तमानान्तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम् ॥ १३६ ॥

मूर्खों के विद्या, सहाय, और धन यह तीनों बड़े मद हैं और यही तीनों मद महात्माओं को सुख देते हैं ॥ १३२ ॥

महात्मा, ज्ञानी और पण्डित दुष्टों के सुधारनेवाले हैं परन्तु दुष्ट इनको नहीं बिगाड सकते ॥ १३३ ॥

सुंदर वस्त्र धारी मनुष्य सभा को, और सवारी अर्थात् वाहन मार्ग को जीतता है, परन्तु शीलवान् पुरुष सम्पूर्ण जगत् को जीत लेता है ॥ १३४ ॥

पुरुष में शील ही मुख्य गुण है जिसके नाश होने से जीवन धन बंधु बांधव इन सब का नाश होजाता है ॥ १३५ ॥

नीचों को वृत्ति अर्थात् आजीविका न मिलने से, मध्यमों को मरने से और उत्तम पुरुषों को अपमान से ही महाभय होता है ॥ १३६ ॥

ऐश्वर्य्यं मद पापिष्ठा मदाः पान मदादयः ।
ऐश्वर्य्यं मदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते ॥ १३७ ॥

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनानुकर्षिणा ।
आपदस्तस्य वर्द्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट् ॥ १३८ ॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते ।
अमित्रान् वा जितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ १३९ ॥

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्य रूपेण यो जयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥ १४० ॥

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ १४१ ॥

ऐश्वर्य का मद, मद से भी अधिक चढता है क्योंकि धन का मतवाला स्वामी और सेवक को कुछ नहीं समझता ॥ १३७ ॥

जिसने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता उसकी आपदा शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह नित्यप्रति बढ़ती जाती है ॥ १३८ ॥

जो मूर्ख अपने मन को बिना जीते अपने कुटुम्ब को वश में करना चाहे और जो बिना कुटुम्ब को वश में किये शत्रुओं को जीता चाहे तो उसके सम्पूर्ण प्रयोजनों का नाश होजाता है ॥ १३९ ॥

जो मनुष्य अपने मन को शत्रु रूप समझ कर प्रथम उसको जीतलेते हैं वही कुटुंब और शत्रुओं को भी जीत सकते हैं ॥ १४० ॥

इन्द्रियों को जीतनेवाले, मन को वश में रखनेवाले, अपराधियों को दंड देनेवाले, परीक्षा करके कार्य करने वाले, और धीर्यवान् पुरुषों को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १४१ ॥

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा
नियतेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखंयाति रथीव धीरः ॥ १४२ ॥

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ १४३ ॥

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थंचैवाप्य नर्थतः ।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥ १४४ ॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्वादिन्द्रिय वशानुगः ।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ १४५ ॥

अर्थानामीश्वरोयःस्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।
इन्द्रियाणामनैश्वर्य्यादैश्वर्य्याद्भ्रश्यते हि सः ॥ १४६ ॥

मनुष्य का शरीर रथ, मन रथवान् अर्थात् सारथी और इन्द्रियां पराक्रमी घोड़े हैं और इस रथ में बैठनेवाला जो बुद्धिवान इन घोड़ों को वश में रखता है वही सब प्रकार के सुखों को पाता है, जैसे दुष्ट घोड़े मार्ग में सारथी को मार डालते हैं वैसे ही बिना जीती हुई इन्द्रियां मन रूपी सारथी का नाश करदेती हैं ॥ १४२, १४३ ॥

अजितेन्द्री पुरुष अर्थ को अनर्थ अर्थात् लाभदायक को हानि दायक, अनर्थ को अर्थ अर्थात् हानिदायक को लाभदायक और दुख को सुख समझता है ॥ १४४ ॥

जो पुरुष धर्म अर्थ को त्यागकर इन्द्रियों के वश में होजाता है उसके प्राण धन स्त्री पुत्रादि सम्पूर्ण वैभव का शीघ्र नाश होजाता है ॥ १४५ ॥

जो मनुष्य धनवान होकर अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं करते उनके संपूर्ण धन और पुत्रादि वैभव का उनहीं इन्द्रियों के द्वारा नाश होजाता है ॥ १४६ ॥

आत्मनात्मनमन्विच्छेन्मनो बुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मा ह्येवात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ १४७ ॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्मात्मना जितः ।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥ १४८ ॥
क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपि हितावुभौ ।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुंपतः ॥ १४९ ॥
समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति ।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥ १५० ॥
यः पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रूनविजित्य मनोमयान् ।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥१५१॥
दृश्यन्ते हि दुरात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः ।
इन्द्रियाणामनौशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ॥१५२॥

बुद्धिमान इन्द्रियों को बश में कर बुद्धि से मन को अपने बश में करे, क्योंकि बुद्धि ही मन की मित्र और शत्रु है ॥ १४७ ॥

जिसने अपनी बुद्धि से मन को अपने आधीन करलिया, मन उसीका मित्र और जिसने उसको बश में नहीं किया उसीका शत्रु है ॥ १४८ ॥

जैसे छोटे छेदवाले जाल से बड़ी मछलियां पकड़ी जाती हैं वैसे ही हे राजन् काम क्रोध लोभ मनुष्य के ज्ञान को लोप करदेते हैं ॥ १४९ ॥

इसलिये जो धर्म अर्थ को विचार कर गृह कार्य करता है उसी को सदा सुख मिलता है ॥ १५० ॥

जो मनुष्य मन से उत्पन्न हुए पांच शत्रुओं को जीतता है वही अन्य शत्रुओं को भी जीत सकता है ॥ १५१ ॥

बहुत से पापी मनुष्य और श्रीमान् जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता कर्मानुसार दुःख भोगते हैं ॥ १५२ ॥

असत्यागात् पापकृतामपापांस्तुल्यो
दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् ।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्
तस्मात् पापैः सह सधिं न कुर्य्यात् ॥ १५३ ॥

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्च प्रयोजनम् ।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद्ग्रसते नरम् ॥ १५४ ॥

अनसूयार्ज्जवं शौचं सन्तोषः प्रिय वादिता ।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥ १५५ ॥

आत्मज्ञान मनायासस्तितिक्षा धर्म नित्यता ।
वाक् चैव गुप्ता दानञ्च नैतान्यन्येषु भारत ॥ १५६ ॥

अक्रोश परिवादाभ्यां विहिंसन्त्य बुधाबुधान् ।
वक्ता पाप मुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥ १५७ ॥

पापियों की संगत से महात्माओं को भी नाना प्रकार के कष्ट होते हैं जैसे सूखे काठ के साथ गीला काष्ठ भी जलजाता है, इसलिये मनुष्य मात्र को दुष्ट अर्थात् खोटे आचरण वाले पुरुषों की संगत न करना चाहिये ॥ १५३ ॥

जो मनुष्य अपने पांच दुःख देनेवाली इन्द्री रूपी शत्रुओं को वश में नहीं करता वह पुरुष नित्यप्रति आपत्ति में पड़ा रहता है ॥ १५४ ॥

दुष्टों को शांति प्रिय वचन कोमलता पवित्रता संतोष दम सत्य और स्थिरता यह गुण नहीं प्राप्त होते ॥ १५५ ॥

आत्मज्ञान, वचन की रक्षा, सहन, धर्म, विद्या, त्याग और दान करना यह दुष्टों में नहीं होते ॥ १५६ ॥

[नोट – अर्थात् इन्ही गुणों से आदमी को सज्जन कह सकते हैं]

दुष्ट अर्थात् खोटे आचरण वाले मनुष्य अपने बुरे वचनों से सज्जनों को दुख देते हैं, जिससे वे मूर्ख उस पाप के कारण नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं ॥१५७॥

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्ड विधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमागुणवतां बलम् ॥ १५८ ॥
वाक् संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।
अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहुभाषितुम् ॥ १५९ ॥
अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥ १६० ॥
रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ १६१ ॥
कर्णिनालीकनाराचा निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक् शल्यस्तु न निर्हर्त्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥ १६२ ॥

दुष्टों का हिंसा, राजाओं का दंड, स्त्रियों का पति सेवा, और गुणवानों का क्षमा ही बल है ॥ १५८ ॥

वचनों को वश में रखना कठिन है, इसलिये अर्थ से भरे हुए और सुंदर वचनों को बहुत समय तक न कहे ॥ १५९ ॥

जो मनुष्य थोड़ा और सुंदर बोलता है उसको आनंद मिलता है और जो बहुत और असत्य बात कहता है उसको दुख मिलता है ॥ १६० ॥

फर्सा का कटा हुआ वृक्ष हरा और बाण का लगा हुआ घाव भर भी जाता है परन्तु वचन रूपी बाणों से लगा हुआ घाव कभी नहीं भरता ॥ १६१ ॥

धनुष से लगे हुए बाण शरीर से निकल भी जाते हैं परन्तु वाणी रूपी बाण नहीं निकल सकते क्योंकि वह हृदय में प्रवेश हो-जाते हैं ॥ १६२ ॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्यनाममंसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ॥१६३॥
यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥ १६४ ॥
बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
अनयो नय सङ्काशो हृदयान्नाप सर्पति ॥ १६५ ॥
यावत् कीर्त्तिर्मनुष्यस्य पुण्यालोके प्रगीयते ।
तावत् स पुरुषव्याघ्र स्वर्गे लोके महीयते ॥ १६६ ॥
तस्माद्राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तु मर्हसि ।
मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थं मब्रुवन् ॥ १६७ ॥

मुख से निकले हुए बाण रूपी वचन जो कोमल स्थान पर गिरते हैं मनुष्य को रातदिन सोच में रखते हैं इसलिये बुद्धिमान ऐसे बाण रूपी वचनों को मुख से न निकाले ॥ १६३ ॥

बुद्धि के नाश होने ही से नाना प्रकार के दुःख मिलते हैं अर्थात् बुद्धि के बिगड़ने ही से दुखोंके मिलने का आरम्भ होताहै जिससे उसके मनमें नीति अनीति और अनीति नीति जान पड़ती है इससे वह खुशामदियों के ही वाक्यों को पसंद कर नीच कर्मों को करने लगता है जिससे उसका नाश होजाताहै ॥१६४, १६५॥

मनुष्य की कीर्त्ति जब तक इस लोक में गाई जाती है तब तकवह स्वर्ग लोक में वास करता है ॥ १६६ ॥

जैसे प्रह्लाद ने अपने पुत्र के लिये झूठ नहीं बोला ऐसे ही आपभी भूमि के अर्थ झूठ मत बोलिये क्योंकि झूठ बोलनेवाले का पुत्रों सहित नाश हो जाता है ॥ १६७ ॥

न देवो दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यन्तु रक्षितु मिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम् ॥१६८॥
यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः ॥ १६९ ॥
नैनं छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति
मायाविनं मायया वर्त्तमानम् ।
नीडं शकुना इव जातपक्षा-
श्छन्दांस्येन प्रजहत्यल्पकाले ॥ १७० ॥
मानोग्निहोत्रमुतमान मौनं
मानेनाधीत मुतमान यज्ञः ।
एतानि चत्वार्य्यं भयङ्कराणि
भयं प्रयच्छन्त्य यथाकृतानि ॥ १७१ ॥

सज्जन पुरुष पशुओं की तरह लाठी से मनुष्यों को नहीं हांकते वरन जिसकी रक्षा करने की इच्छा करते हैं उसको सदोपदेश देकर बुद्धिमान करदेते हैं ॥ १६८ ॥

जैसे २ मनुष्य की बुद्धि अच्छे कार्यों की ओर जाती है उसी भांति उस मनुष्य के काम पूर्ण होते जाते हैं ॥ १६९ ॥

जो पुरुष पापी और कपटी हैं उनकी वेद कुछ रक्षा नहीं करते वरन ऐसे छोड़देते हैं जैसे घोसले को पक्षी पंख निकलने पर, अर्थात् सुकर्म ही मनुष्य को दुखों से बचाता है ॥ १७० ॥

जो मनुष्य सन्मान पाने के लिये अग्निहोत्र और यज्ञ करता और विद्या पढ़ता है उसका अभी कल्याण नहीं होता, परन्तु जो बिना लालच के करता है उसी को सुख मिलता है ॥ १७१ ॥

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोम विक्रयी ।
पर्वकारश्च सूचीच मित्रध्रुक् पारदारिकः ॥ १७२ ॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः ।
अतितीक्ष्णश्च कामश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ १७३ ॥
स्रुवप्रग्रहणो ब्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि ।
रक्षेत्युक्तश्च यो हि स्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः ॥१७४॥

तपोऽग्न्या ज्ञायते जात रूपं
वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः ।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीर
कृच्छ्रास्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥ १७५ ॥

मकान जलानेवाला, विषदेने वाला, कुंडासी और यज्ञ के फल का वेचनेवाला, यज्ञ बनाने वाला, नचच सूची अर्थात् थोडो ज्योतिष जाननेवाला, मित्र से द्रोह अर्थात् लडाई झगडा करने वाला पराई स्त्री से अधर्म करनेवाला, गर्भ का नाश करने वाला, गुरू की शय्या पर पैर रखनेवाला, मदिरा पीनेवाला अति तीक्ष्ण, अति क्रोधी, कौवा की तरह वृत्ति करनेवाला, नास्तिक अर्थात् वेद की निंदा करनेवाला, विना यज्ञोपवीत के यज्ञ करानेवाला, दूसरे के भाग को छीन लेने वाला और शरण आये हुए की रक्षा न करनेवाला—इन सब को ब्रह्म हत्या के समान पाप होता है ॥ १७२, १७३, १७४ ॥

अग्नि से सुवर्ण, आचरण से सत्पुरुष, व्यवहार से साधू, युद्ध में शूर-वीर, कठिन कार्यों में धीरता, और विपत्ति के समय मित्र जाने जाते हैं ॥ १७५ ॥

जरा रूपं हरति हि धैर्य्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मंमर्य्यामसूया ।
क्रोध श्रियः शीलमनार्य्य सेवा
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥ १७६ ॥
श्रीमङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् संप्रवर्द्धते ।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति ॥ १७७ ॥
यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च
चत्वार्य्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः ।
दमः सत्यमार्ज्जवमानृशंस्यं
चत्वार्य्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥ १७८ ॥
अष्टौ नृपेमानि मनुष्य लोके
स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।
चत्वार्य्येषामन्ववेतानि सद्भि-
श्चत्वारि चैषा मनुयान्ति सन्तः ॥ १७९ ॥

जैसे बुढ़ापा रूप को, आशा धीरज को, मृतक प्राणों को, दुष्टता धर्म को, क्रोध लक्ष्मी को, दुष्ट सेवा शील को, काम लज्जा को, नाश कर देता है वैसे ही अभिमान सब को नाश करदेता है ॥ १७६ ॥

शुभ कर्मों के करने से धन मिलता है और अच्छे कर्मों में तत्पर रहने से उसकी जड़ जमती है, संयम अर्थात् इन्द्रियों के जीतने से वह सदैव बना रहता है ॥१७७॥

यज्ञ दान विद्या तपस्या यह महात्माओं को जानने योग्य हैं; और इंद्रियों का जीतना सत्य बोलना कोमलता और दयालुता यह संतों अर्थात् सज्जनों के स्वाभाविक गुण हैं ॥ १७८ ॥

इन आठ गुणों में से चार गुण स्वर्ग को पहुंचाते हैं और शेष चार गुणों के होने से मनुष्य महात्मा कहाता है ॥ १७९ ॥

इज्याध्ययन दानानि नयः सत्यं क्षमा घृणा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्ट विधः स्मृतः ॥ १८० ॥
तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥ १८१ ॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा येन वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥ १८२ ॥

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।
शौर्यं च चित्र भाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः ॥ १८३ ॥

यज्ञ और दान करना, विद्या पढ़ना, नीति से चलना, सच बोलना, क्षमा और दया करना, लोभ न करना—यह आठ धर्म मार्ग हैं ॥ १८० ॥

इनमें से प्रथम के चार दुष्ट मनुष्य नामवरी के लिये भी करते हैं परन्तु अन्त के चार दुष्ट मनुष्य नहीं कर सकते अर्थात् इन चार गुणों से मनुष्य की सज्जनता जानी जाती है ॥ १८१ ॥

हे राजन वह सभा नहीं जहां वृद्ध न हों, और वह वृद्ध नहीं जो धर्म को न कहें, वह धर्म नहीं जो सत्य नहीं, और वह सत्य नहीं जिसमें छल हो ॥ १८२ ॥

सत्य, रूप, गुण, विद्या, उत्तम कुल में जन्म, बल, धर्म, शूरता, सभा के योग्य विचित्र वार्त्ता करना, यह बातें मनुष्य को स्वर्ग में लेजाती हैं ॥ १८३ ॥

पापं कुर्वन् पापकीर्त्तिः पापमेवाश्नुते फलम् ।
पुण्यं कुर्वन् पुण्य कीर्त्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ॥ १८४ ॥
तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः ।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ १८५ ॥
नष्ट प्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं प्रज्ञां बर्द्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ १८६ ॥
बुद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्य मारभतेनरः ।
पुण्यंकुर्वन् पुण्य कीर्त्तिः पुण्यं स्थानंस्म गच्छति ॥ १८७ ॥
तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः ।
असूयको दन्दशूकी निष्ठुरो वैरकृच्छठः ॥ १८८ ॥
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पाप माचरन् ।
अनसूयः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा ॥ १८९ ॥

जो पाप करता है उसकी अपकीर्त्ति होती है और उसको पाप का फल मिलता है और धर्मात्मा जो धर्म युक्त कार्य करने से यश और उसका शुभ फल भी मिलता है ॥ १८४ ॥

इसलिये मनुष्य मात्र को उचित है कि पाप कर्मों को कभी न करे क्योंकि बार बार पाप करने से बुद्धि का नाश होजाता है ॥ १८५ ॥

बुद्धि के नाश होने से मनुष्य नित्य पाप ही करता है, सत्कर्म से बुद्धि बढ़ती है और बुद्धि के बढ़ने से मनुष्य सदा शुभ कर्म करता है जिससे उसको कीर्त्ति और जीवन मुक्ति मिलती है ॥ १८६, १८७ ॥

इसलिये उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि वे धर्म युक्त अर्थात् शुभ कार्य करें ॥ १८८ ॥

निंदा, डाह, और दूसरे के कार्यों का नाश करनेवाला, और कठोर वचन कहनेवाला दुष्ट मनुष्य का पाप के कारण शीघ्र नाश होजाता है ॥ १८९ ॥

न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते ।
प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः ॥ १९० ॥
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ।
दिवसेनैव तत् कुर्य्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत् ॥ १९१ ॥
अष्टमासेन तत् कुर्य्याद्येन वर्षा सुखं वसेत् ।
पूर्वं वयसि तत् कुर्य्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ॥ १९२ ॥
यावज्जीवेन तत् कुर्य्याद्येनामुत्र सुखं वसेत् ।
जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्य्यां च गत यौवनाम् ॥ १९३ ॥
शूरं विजित संग्रामं गतपारं तपस्विनम् ।
धनेनाधर्म लब्धेन यच्छिद्रमपि धीयते ॥ १९४ ॥

जो किसी की उन्नति देख कर दुख नहीं मानते, जिसकी बुद्धि सदा सावधान रहती है और जो सदा अच्छे कर्म करता है उसको कभी दुख नहीं मिलता और उसकी सब जगह प्रशंसा होती है, और जो पुरुष अपनी बुद्धि, बुद्धि की उन्नति करता है वही पंडित है ॥ १९० ॥

बुद्धिमान धर्म अर्थ युक्त कार्य करने ही से सुखपाता है, दिन में वह काम करे जिससे रात को सुखप्राप्त हो ॥ १९१ ॥

आठ महीने में वह काम करे जिससे वर्षा में, और पहिली अवस्था में वह काम करे जिससे वृद्ध अवस्था में सुख हो ॥ १९२ ॥

आयु भर मनुष्य को वह काम करना चाहिये जिससे मरने के बाद सुख हो ॥ १९३ ॥

अन्न की पचने पर, स्त्री की यौवन बीतने पर, शूर की संग्राम जीतने पर, तपस्वी की तपस्या पूरी होने पर सराहना होती है, परन्तु अधर्म के प्राप्त किये हुए धन के पाप का सदा भय लगा रहता है, वह पाप किसी प्रकार छिप नहीं सकता और बिना दंड दिये भी नहीं छोडता ॥ १९४ ॥

असंवृतं तन्नवति ततोऽन्यदवदीर्य्यते ।
गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ॥ १९५ ॥
अथ प्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ।
ऋषीणाञ्च नदीनाञ्च कुलानाञ्च महात्मनाम् ॥ १९६ ॥
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ।
द्विजाति पूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्ज्जवी ॥ १९७ ॥
एतत् कार्य्यमसूयाः संश्रुतं मे
धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः ।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं
प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥ १९८ ॥
आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षितः ।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ १९९ ॥

गुरु महात्माओं को, राजा दुष्ट मनुष्यों को, और परमेश्वर छुपकर पाप करनेवालों को दंड देता है। नदी, ऋषि, महात्माओं के कुल, और स्त्रियों के चरित्रों का प्रभाव जानना अति कठिन है, इसलिये क्षत्रियों को चाहिये कि सज्जन ब्राह्मणों की पूजा अर्थात् आदर सत्कार किया करें और शील से सदा रहें ॥ १९५, १९६, १९७ ॥

कपट की गांठ को हृदय से दूर कर सबको समान देखना, धीरज, रखना इन्द्रियों का जीतना, और सत्य कहना यह धर्म है ॥ १९८ ॥

जो कोई निंदा अर्थात् बुराई करे तो आप उसकी निंदा न करे, और जो कोई क्रोध करे तो उसको सहले, क्योंकि वह क्रोध क्रोधकर्ता ही को भस्म करता है और क्षमा करने वाले को कल्याणकारी होता है ॥ १९९॥

नाक्रोशीस्यान्नावमानी परस्य
मित्रद्रोही नीत नीचोपसेवी ।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो
रूक्षां वाचमुषतीं वर्ज्जयीत ॥ २०० ॥

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून्
रूक्षा वाचो दिर्हन्तीह पुंसाम् ।
तस्माद्वाचमुषतीं रूक्षरूपां
धर्मारामो नित्यशो वर्ज्जयीत ॥ २०१ ॥

अरुन्तुदं पुरुषं रूक्ष्यवाचं
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान् ।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां
मुखेनिबद्धां निर्ऋतिं वै वहन्तम् ॥ २०२ ॥

कभी मनुष्य बुरी बात, किसी का अपमान, मित्र से बैर, नीच की सेवा, और अभिमान न करे, और अच्छे आचरण को भी कभी न छोड़े ॥ २०० ॥

धर्मात्मा को योग्य है कि दुष्ट बातें अर्थात् रूखी बाणी कभी न कहे, क्योंकि दुष्ट बातें मनुष्य के हृदय हाड़ और प्राणों को दाहकरती हैं जिससे धर्म का नाश होजाता है ॥ २०१ ॥

जो चित्त का दुखानेवाला और दुष्ट बचन कहनेवाला पुरुष बाणी रूपी कांटों से श्रोता के हृदय को छेदता है वह मनुष्यों में बुरा समझा जाता है और उसके साथ सदा झगड़ा बना रहता है ॥ २०२ ॥

यस्त्वेवमभिविध्येत वाणै-
र्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कप्रदीप्तैः ।
स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो
विद्यात् कविः सुकृतं मे दधाति ॥ २०३ ॥
यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ २०४ ॥
अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्यो
नाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत् ।
हन्तुश्च यो नेच्छति पापकं वै
तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥ २०५ ॥

बाण रूपी वाणी कहनेवाले को दुःख और श्रोता को सदा सुख होता है ॥ २०३ ॥

चाहें साधू हो वा दुष्ट, चाहें तपस्वी हो वा चोर, इनकी संगत करने से मनुष्य के चित्त पर उसका प्रभाव अवश्य होता है जैसे वस्त्र पर रंग का होता है, अर्थात् मनुष्य खोटों की संगत से खोटा और अच्छों की संगत से अच्छा होजाता है ॥ २०४ ॥

जो मनुष्य अति वाद न करता और न दूसरों से कराता है, न किसी को मारता न किसी से मारखाता और न किसी के मारने की इच्छा करता है उसकी विद्वान् लोग प्रशंसा करते हैं ॥ २०५ ॥

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम् ।
प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं
धर्म्यं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ २०६ ॥
यतो यतो निवर्त्तते ततस्ततो विमुच्यते ।
निवर्त्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमणुपि ॥ २०७ ॥
न ह्रीयते नानुजिगीषतेऽन्या-
न्न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च ।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो
न शोचते हृष्यति नैवचायम ॥ २०८ ॥
भाव मिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः ।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥ २०९ ॥
नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च ।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः ॥ २१० ॥

बुरे बोलने से न बोलना, बोलने में भी सत्य, सत्य में भी प्यारा, और प्यारे में भी धर्मयुक्त बोलना अर्थात् प्राणीमात्र को धर्मयुक्त बोलाना सर्वोपरि श्रेष्ठ है, और धर्मयुक्त बोलनेवाले को ही प्यारा कहते हैं क्योंकि आत्मा को धर्म ही प्रिय है ॥२०६॥

जहां से मनुष्य अपने चित्त को लौटाना चाहता है वहां से लौट आता है और सब से मन हटजाने पर कुछ भी दुःख नहीं होता, और जिसको किसी प्रकार का दुःख नहीं, न किसी के मारने की इच्छा करता, न निंदा प्रशंसा करता है न किसी से प्रसन्न अप्रसन्न होता है, उसका चित्त समान होजाता है ॥२०७, २०८॥

जो पुरुष सब की भलाई और किसी की बुराई नहीं चाहता, और जो सत्य और कोमल बात कहता और इन्द्रियोंको जीतता है वही उत्तम पुरुष है ॥ २०९ ॥

जो किसी के लिये बुराई नहीं चाहता, जिस वस्तु के देने की प्रतिज्ञा करे उसे देदेता है और दोष जानकर बतादेता है वह मध्यम पुरुष है ॥ २१० ॥

दुःशासनोस्तूपहतोऽभिशस्तो
नावर्त्तते मन्युवशात् कृतघ्नः ।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा
कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः ॥ २११ ॥
न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्म शङ्कितः ।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः ॥ २१२ ॥
तपो दमो ब्रह्म वित्तं वितानः
पुण्या विवाहाः सततंचान्न दानम् ।
येष्वेवैते सप्त गुणा भवन्ति
सम्यग्वृतास्तानि महाकुलानि ॥ २१३ ॥
येषां वृत्तं न व्यथते न योनि-
श्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।
ये कौर्त्तिमिच्छन्तिकुले विशिष्टां
त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥ २१४ ॥

जो सदा खोटे वचन कहे, हर समय क्रोधी ही रहे, कृतघ्नी अर्थात् उपकार को न माने, किसी का मित्र न हो अर्थात् सदा दुष्टता करता रहे, किसी से श्रद्धा न करे, मित्रों का निरादर करे, और अपने किये हुए कर्मों में भी शंका करे, ऐसे पुरुषों को नीच और अधम कहतेहैं ॥ २११, २१२ ॥

जिन कुलों में तप करना, इन्द्रियों का जीतना, वेद विद्या का पढ़ना, यज्ञादि का करना, अच्छे कुल में विवाह करना, होम और दान, सदा होता रहता है और जिस कुल में मनुष्यों के अच्छे आचरण हैं खोटे काम नहीं करते, माता पितादि दुख नहीं पाते, प्रसन्न चित्त होकर धर्म करते है और झूठ नहीं बोलते वही बड़े कुल हैं ॥ २१३, २१४ ॥

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥ २१५ ॥
देवद्रव्य विनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्य कुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ २१६ ॥
कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ।
कुलसङ्ख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ २१७ ॥
वृत्ततस्त्व विहीनानि कुलान्यल्प धनान्यपि ।
कुलसङ्ख्याञ्च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥ २१८ ॥
वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेत च याति च ।
अक्षीणो वृत्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ २१९ ॥

जिन बड़े कुलों में यज्ञ और उत्तम रीति से विवाह नहीं होते, जिस कुल में वेद नहीं पढ़ते, धर्म को बिगाड़ते, विद्वान् महात्मा धर्मात्मा ब्राह्मणों का धन छीनते और उनकी निंदा करते हैं, वह भी शीघ्र नीच हो जाते हैं ॥२१५, २१६॥

जो कुल धन धान्य से सम्पन्न है परन्तु उसके मनुष्यों के आचरण भ्रष्ट हैं वह उत्तम कुल नहीं होसकते, और जिन कुलों में धन थोड़ा है परन्तु उसके मनुष्यों के आचरण अच्छे हैं तो वह उत्तम कुल कहाते हैं ॥ २१७, २१८ ॥

धन की स्वाभाविक प्रकृति आने और जाने की है इसलिये यत्न पूर्वक आचरणों को सुधारना चाहिये, बहुत धन होने पर भी खोटे आचरणवाला मनुष्य खोटा, और न्यून धन होने पर भी शुभ आचरणवाला पुरुष उत्तम कहाता है ॥२१९॥

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृषा च सुसमृद्धया ।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ २२० ॥
तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ २२१ ॥
श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम् ।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ॥ २२२ ॥
सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै
शक्तो वोढुं न तथान्ये महौजाः ।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति
महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः ॥ २२३ ॥
चलच्चित्त मनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।
अर्थाः समतिवर्त्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा ॥ २२४ ॥

धन पशु खेती व्योपार इन सब से कुल की उत्तमता नहीं होती, परन्तु उसके मनुष्यों के उत्तम चाल चलन होने से ही कुल की श्रेष्ठता होती है ॥२२०॥

विछौना अर्थात् आसन, पृथ्वी, जल, सच्चे वचन – यह चार बातें महात्मा अर्थात् सज्जन पुरुषों के घर में अवश्य होनी चाहिये ॥ २२१ ॥

हे राजन धर्मात्मा लोग श्रद्धा पूर्वक उपरोक्त चार बातों से महात्माओं का सत्कार करते हैं, क्योंकि उपरोक्त चार लक्षण उत्तम कुल के हैं ॥ २२२ ॥

जैसे भारी रथ को घोड़ों के अतिरिक्त और कोई नहीं लेजा सकता वैसे ही कुलीन बुद्धिमान चरित्र रूपी भार को सहलेते हैं और लोग नहीं सह सकते ॥ २२३ ॥

जिसका मन चित्त शरीर स्थिर नहीं और इन्द्रियों के वशीभूत है उस को धर्म अर्थ ऐसे छोड़देता हैं जैसे सूखे सरोवर को हंस छोड़देते हैं ॥ २२४ ॥

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥ २२५ ॥

पुनर्नरो म्रियते जायते च
पुनर्नरो हीयते वर्द्धते च ।
पुनर्नरो याचति याच्यते च
पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥ २२६ ॥
सुखञ्च दुःखञ्च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणंजीवितं च ।
पर्य्यायशः सर्वमेतेस्पृशन्ति
तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥२२७॥
चलानि ह्यमानि षड़िन्द्रियाणि
तेषां यद्यद्धर्द्धते यत्र यत्र ।
ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य
छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः॥ २२८ ॥

जिस मनुष्य का चित्त जल में नाव के समान चलायमान हो, जो मनुष्य बिना प्रयोजन क्रोध करे और अप्रसन्न होजावे, यह स्वभाव बुरे मनुष्यों अर्थात् मूर्खों के हैं, जैसे बादल बिना बरसे चलागया ॥ २२५ ॥

यह मनुष्य बार २ मरता और बार २ पैदा होता है, कभी नाश और कभी वृद्धि को प्राप्त होता है, कभी मांगता और कभी देता है, कभी शत्रुओं को शोक बढ़ाता है अर्थात् सुख, दुःख, जन्म, मरण, लाभ, हानि, मनुष्य को सदा लगे रहते हैं इसलिये धीर्यवान् पुरुषों को हर्ष शोक न करना चाहिये ॥ २२६, २२७ ॥

पांचो इन्द्रियां चलायमान हैं इनमें से जो वृद्धि को प्राप्त होती है उसी के बल से बुद्धि खराब होजाती है, जैसे छेदवाले घड़े का जल गिरजाता है ॥२२८॥

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र लोभ संत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ॥ २२९ ॥
बुद्ध्याभयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत् ।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥ २३० ॥
अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥ २३१ ॥
स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः ।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥ २३२ ॥
स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना
न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते ।
न स्त्रीषु राजन्रतिमाप्नुवन्ति
न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥ २३३ ॥

हे महाराज जैसे इन्द्रियों के बिना रोके विद्या और तपस्या नहीं, ऐसेही लोभ के बिना त्यागे शांति का कोई उपाय नहीं है ॥ २२९ ॥

बुद्धि से भय दूर होता है, तपस्या से महत्व, गुरु की सेवा से ज्ञान, और योग से शांति प्राप्त होती है ॥ २३० ॥

जिन्हों ने दान पुण्य नहीं किया और वेद को नहीं पढ़ा वे पुरुष राग द्वेष से नहीं छूटते हैं और इसी लोक में विचरते रहते हैं ॥ २३१ ॥

विद्या पढ़ने, युद्ध, सुकर्म और उत्तम तपस्या का फल पूर्ण होने पर प्राप्त होता है ॥ २३२ ॥

जिन मनुष्यों का मन दुखी होता है उनको उत्तम शय्या पर सोने, भाटों की स्तुति सुनने, और स्त्रियों से वार्त्तालाप करने पर भी सुख नहीं होता ॥ २३३ ॥

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥ २३४ ॥

तन्तवोऽप्यायता नित्यं तनवो बहुलाः समाः ।
वहून् बहुत्वादायासान् सहन्त्योत्पमा सताम् ॥२३५॥

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः ।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो महितुं क्षणात् ॥ २३६ ॥

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं हिंसन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥ २३७ ॥

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः ।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योऽन्यसंश्रयात् ॥२३८॥

जिन मनुष्यों के वाणी रूपी बाण लगते हैं वे धर्म को नहीं कर सकते, न उनको शांति और सुख मिलता है, और उनका गौरव भी नष्ट होजाता है ॥ २३४ ॥

बंश सदा बढ़ता और घटता, शरीर बहुत वर्षों तक रहता है, मनुष्यों को बहुत प्रकार के दुःख होते हैं, परन्तु महात्मा लोग उनको सदा सहते हैं ॥ २३५ ॥

जैसे अकेले वृक्ष को चाहे वह बड़ा, बलवान, और प्रतिष्ठित हो आंधी उखाड़ डालती है वैसे ही अकेला मनुष्य चाहे वह गुणवान और बलवान हो तो भी शत्रु के हाथ से मारा जाता है ॥ २३६, २३७ ॥

जिस वन में बहुत से वृक्ष होते हैं वहां के वृक्ष बड़ी आंधी आने पर भी नहीं टूटते क्योंकि वहां एक वृक्ष दूसरे की सहायता करता है ॥ २३८ ॥

अन्योऽन्यसमुपष्टम्भाद्न्योऽन्यापाश्रयेण च ।
ज्ञातयः सम्प्रवर्द्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥ २३९ ॥
अवध्यो ब्राह्मणो गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः ।
येषाञ्चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥२४०॥
न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन् सधनतामृते ।
अनातुरत्वाद्भद्रन्ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥ २४१ ॥
अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं पुरुषं तीक्ष्ण मुष्णम् ।
सतामेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युमहाराज पिब प्रशाम्य ॥ २४२ ॥
रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् ।
दुःखापेता रोगिणो नित्यमेव
न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥ २४३ ॥

आपस के मेल से अर्थात् एक दूसरे के आश्रय से जातवाले वृद्धि को ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे तालाब में कमल ॥ २३९ ॥

ब्राह्मण, गऊ, जातवाले, बालक, स्त्री, जिसका खावे, और जो शरणागत आवे इनको कभी न मारना चाहिये ॥ २४० ॥

मनुष्य में सामर्थ के सिवाय और कोई गुण नहीं वह भी निरोग पुरुषों में होता है क्योंकि रोगी पुरुष मरे हुए के समान होता है ॥ २४१ ॥

इसलिये निरोग और बलवान पुरुषों को अधर्म के बढ़ाने वाली, तेज, गर्म, कड़ुई रोग दूर करनेवाली और बुद्धिमानों के पीने योग्य, क्रोध रूपी अग्नि को पीकर शांति होना चाहिये ॥ २४२ ॥

रोगी को किसी प्रकार का आनंद और आदर नहीं मिलता, विषयों के तत्व को नहीं जानता वह रोग के दुःख के समान कुछ नहीं समझता ॥२४३॥

न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते
सूक्ष्मो हि धर्मस्तरसा सेवितव्यः ।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्-
दुप्रौढ़ा गच्छति पुत्र पौत्रान् ॥ २४४ ॥

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्य्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ २४५ ॥

दानवेन्द्रस्य हि धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥२४६॥

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्ये
द्यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम् ।
स्त्रियञ्च.यो रक्षति भद्रमस्तुते
यश्चायाच्यं याचते कथ्यते च ॥ २४७ ॥

जो क्षमावान् पुरुष से वैर करता है वह बली नहीं, मनुष्य को योग्य है कि सदा सूक्ष्म धर्म को करे, अन्याय से कमाया हुआ धन वंश सहित नाश होजाता है और जो धर्मानुसार धन मिलता है वह पुत्र पौत्रादि तक बढ़ता और सुख देता है ॥ २४४ ॥

स्वयम्भू मनु ने कहा है कि जो कोई मुट्ठी से आकाश को पीसे इन्द्र धनुष को नवाना चाहे सूर्य की ओर देखना, और चन्द्रमा की किरणों को पकड़ना चाहे जो अशिष्य को शिक्षा करे, जो कुसमय प्रसन्न हो, जो शत्रु की सेवा करे, जो स्त्री की रक्षा करके भलाई चाहे, जो अयाच्य को मांगे, जो किये काम को बार २ करे ॥ २४५, २४६, २४७ ॥

यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्य्यं
यश्चावलो बलिना नित्यवैरी ।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति
यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥ २४८ ॥
बध्वावहासं श्वशुरो मन्यते यो
बध्वावसन्नभयो मानकामः ।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं
स्त्रियश्च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥ २४९ ॥
यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीतिवादी
दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः ।
यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत
एतन्नयन्ति निरयं पाशहस्ताः ॥ २५० ॥
शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ २५१ ॥

जो कुलीन होकर बुरा काम करे, जो निरबल होकर बली से बैर करे, जो अश्रद्धालु से बात करे, जो न करने योग्य कामों को करे, जो ससुर होकर बहू से हंसी करे, जो बधू के संगवास करे जो अभय होकर मान की चाहना करे, जो पराये क्षेत्र में बीजबोवे अर्थात् जो अपने वीर्य को परस्त्री वेश्या गमनादि में व्यय करे, जो स्त्रियों से हर समय झगड़ा करे, जो वस्तु पाकर कहे कि याद नहीं दी है या नहीं, जो भीख मांगनेवालों से अपनी प्रशंसा करे, जो देकर बार २ कहे, जो दुष्टों को साधु बनाने के लिये यत्न करे – ऐसे पुरुषों को अवश्य नरक प्राप्त होता है ॥ २४८, २४९, २५० ॥

धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा कि वेदों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष की लिखी है परन्तु अब सौ वर्ष तक नहीं पहुंचता इसका क्या कारण है ॥ २५१ ॥

अतिमानोतिवादश्च तथात्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रौहश्च तानि षट् ॥ २५२ ॥
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान् घ्नन्ति नमृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ २५३ ॥
अहिंसा सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चापि माननम् ॥ २५४ ॥
विश्रब्धस्त्रीति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः ।
वृषली पतिर्द्विजो यश्च यश्च पानपश्चैव भारत ॥ २५५ ॥
आदेशकृद्वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः ।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः ।
एतैः समेत्य कर्त्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ २५६ ॥

अति मान अर्थात् घमंड अति वाद अर्थात् लड़ाई झगड़ा, क्रोध, अपनी आत्मा का बुद्ध अर्थात् धर्म अर्थ के विना विचारे मनमाने कार्य करना, मित्र से द्रोह करना, किसी की वस्तु को न देना, इन छः बातों से मनुष्य की आयु घटती है और इन्हीं से वह नाश को प्राप्त होती है, अर्थात् यही छः बातें मनुष्य की आयु को शीघ्र नाश करती हैं ॥ २५२, २५३ ॥

कोमलता, अहिंसा, क्षमा, धारणा, मित्र को मानना, इन छः बातों से आयु बढ़ती है ॥ २५४ ॥

जो विश्वासवाले की स्त्री से कुकर्म करता है, जो गुरु की शय्या पर जाता, जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य होकर वेश्या से संगत करता, जो मदिरा पीता, जो किसी की नियत आजीविका का नाश करता, जो ब्राह्मणों को नौकर रखता, और जो शरणागत आयेहुए को मारता है, उसे ब्रह्महत्या के तुल्य पाप होता है, वेदमेंयह भी लिखा है कि इनको कूकर प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥२५५, २५६॥

गृहीतवाक्यो नपविद्दान्यः
शेषान्नभोक्ता च्चविहिंसकश्च ।
नानर्थकृत्याकुशलः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥ २५७ ॥
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २५८ ॥
यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्त्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥ २५९ ॥
द्यूत मेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २६० ॥
आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ २६१ ॥

जो सत अर्थात् विद्वानों के वचन को ग्रहण करता हो, जो प्रत्येक विषयों को अच्छे प्रकार कहसकता हो, जो अपने कुटुम्बियों को भोजन कराकर आप भोजन करता हो, जो किसी प्रकार की हिंसा न करता हो, जो बिना अनर्थ किये न घबड़ाता हो, जो चतुर और सत्यवक्ता उपकार का माननेवाला और कोमल स्वभाववाला हो ऐसा सज्जन स्वर्ग को जाता है ॥२५७॥

मुंहपीछे मीठी बात करनेवाले बहुत हैं, परन्तु अप्रारी और सत्य बात के कहने और सुननेवाले बहुत कम हैं ॥ २५८ ॥

जो धर्मानुकूल श्रीमानों के प्यार और क्रोध को छोड़कर कड़ुई और हितकारी बात कहता है वही श्रीमानों का सच्चा सहायक है ॥ २५९ ॥

जुआ पहले समय में भी हानि कारक था और अब भी है इसलिये बुद्धिमानों को उचित है कि जुआ हंसी के लिये भी न खेलें ॥ २६० ॥

आपत्ति के अर्थ धन की, धन से कुटुंब की, और आत्मा की इन दोनों से रक्षा करे ॥ २६१ ॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं
भृत्यस्य भक्तस्य हितेरतस्य ।
तस्मिन् भृत्या भर्त्तरि विश्वसन्ति
न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २६२ ॥
न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन
राज्यं धनं सञ्जिघृक्षेदपूर्वम् ।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः
स्निग्धाश्चमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २६३ ॥
कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वा
ण्यायव्यये चानुरूपाञ्च वृत्तिम् ।
सङ्गृह्णीयादनुरूपान् सहायान्
सहाय साध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २६४ ॥

जो श्रीमान अपने नौकरों पर हर समय क्रोध नहीं करता और जो अपने भक्त के हित में रहता है अर्थात् योग्य सेवक के साथ भलाई करता है उस श्रीमान का सेवक लोग विश्वास करते हैं और आपत्ति के समय में भी नहीं त्यागते ॥ २६२ ॥

नौकरों की नौकरी काट कर श्रीमान धन इकट्ठा न करें क्यों कि इससे उनके सब सुखों का नाश होजाता है जिससे वह नाना प्रकार के झगड़े करते हैं ॥ २६३ ॥

मनुष्य को चाहिये सब कामों को सोच विचार कर और लाभ हानि पर भी दृष्टि डाल कर काम करे तत्पश्चात् सहायता लेने योग्य पुरुषों की ही सहायता लेवे क्योंकि अपने कार्य के शुभ सहायक बहुत कम मिलते हैं ॥ २६४ ॥

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्त्तुः
सर्वाणि कार्य्याणि करोत्यतन्द्रीः ।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्य्यः
शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २६५ ॥

वाक्यन्तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः
प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः ।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी
त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥ २६६ ॥

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं
सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्य्यमन्यैः ।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं
भृत्यं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥ २६७ ॥

जो सेवक श्रीमानों के अभिप्राय को जान आलस्य को छोड़ कर स्वामी की भलाई और हितकारी बात कहते हैं अर्थात् अच्छे कार्य करनेवाले हैं और श्रीमानों के बल को जानते हैं उन सेवकों की श्रीमानों को अपने कुटुंब के समान रक्षा करनी चाहिये ॥ २६५ ॥

जो सेवक अपने स्वामी की सत् आज्ञाओं का अपमान करता हो, और अपनी बुद्धि का अभिमान कर बात को काटता होतो ऐसे मूर्ख नोकर को तुरन्त त्यागदेना चाहिये ॥ २६६ ॥

जो कठोर नपुंसक और अहंकारी नहो, जो समयानुकूल कार्य करने वाला, चतुर कोमल आरोग्य और उदार वाक्य हो, और जिसको कोई अपने वश में न करसके, ऐसे मनुष्य को दूत बनाना चाहिये ॥ २६७ ॥

ह्रीणो राजा पुंश्चली राजभृत्यः
पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा ।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव
व्यवहारेषु वर्ज्जनीयाः स्मृतेते ॥ २६८ ॥

अष्टौगुणास्तात पुरुषन्दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यञ्च श्रुतन्दमश्च ।
पराक्रमश्चा बहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ २६९ ॥

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते
बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च
श्रीः सौकुमार्य्यं प्रवराश्च नार्य्यः ॥ २७० ॥

लज्जावान राजा, कुटिला स्त्री, राजा का नौकर, पुत्र, भाई, विधवा स्त्री, फौज का सरदार और जिसका अधिकार छीना गया हो इन लोगों से व्यवहार न करना चाहिये ॥ २६८ ॥

बुद्धि, कुलीनता, वेद विद्या का पढ़ना, पराक्रम, यथायोग्य वार्त्ता और दान करना, कृतज्ञता अर्थात् उपकार को मानना, दम अर्थात् इन्द्रियों का जीतना, इन आठ गुणों से श्रीमान् यश पाते हैं। बल, रूप, स्वर, वर्ण की शुद्धता, स्पर्श अर्थात् पवित्र वस्तुओं का छूना, सुंघना, उज्ज्वलता, धन, सुकुमारता, सुंदर स्त्री, यह आठ गुण महात्माओं को ही मिलते हैं ॥ २६९, २७० ॥

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते
आरोग्यमायुश्च बलं सुखञ्च ।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं
न चैनमाद्यूत इति क्षिपन्ति ॥ २७१ ॥
अकर्मशीलञ्च महाशनञ्च
लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्ट वेश-
मेतान् गृहे न प्रतिवासयेत ॥ २७२ ॥
कदर्य्यमाक्रोशकमश्रुतं च
वनौकसं धूर्त्तममान्यमानिनम् ।
निष्ठुरिणं दृढ़वैरं कृतघ्नमेतान्
भृशार्त्तोऽपि न जातु याचेत् ॥ २७३ ॥

आरोग्यता, आयु, बल, सुख, संतान बलवान होना, क्षीण वीर्य न होना, यह छः गुण कम भोजन करनेवालों को मिलते हैं ॥ २७१ ॥

इसीलिये महात्मा लोग बहुत खानेवालों की निन्दा करते हैं, बहुत खानेवाला, लोक का बैरी, छली, देशकाल न जाननेवाला और कुरूप, इनको सज्जन पुरुष अपने घर में न रहने दे ॥ २७२ ॥

कुकर्म करनेवाला, गाली देनेवाला, जिसने वेद न पढ़ा हो न सुना हो, वनवासी, धूर्त्त माननीय पुरुषों का मान न करनेवाला, निठुर दृढ़ बैरी, कृतघ्नो अर्थात् जो उपकार को न माने ऐसे पुरुषों से अत्यन्त दुख पड़ने पर भी याचना न करे ॥ २७३ ॥

सहायवन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः ।
अन्योऽन्यबन्धनावेतौ विनान्योऽन्यं न सिध्यतः ॥ २७४ ॥

उत्पाद्य पुत्रानऋणांश्च कृत्वा
वृत्तिञ्च तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित् ।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा
अरण्यसंस्थोऽथमुनिर्बुभूषेत् ॥ २७५ ॥

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तत् कुर्य्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥ २७६ ॥

बुद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च ।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः ॥ २७७ ॥

धन से सहायक मिलते हैं और सहायकों से धन मिलता है, इन दोनों का आपस में ऐसा संबंध है कि एक के बिना दूसरा सिद्ध नहीं होता ॥ २७४ ॥

मनुष्यों को चाहिये कि पुत्रों को उत्पन्न कर विद्या पढ़ावे फिर उन को सब ऋणों से उद्धार कर किसी व्योपार में लगादे, और लड़कियों का अच्छे घर विवाह करके वन में जाकर तपस्या करे ॥ २७५ ॥

मनुष्य को उचित है कि ऐसा काम करे जिससे अपना और सब जगत का कल्याण हो, अपने आत्मा का सुख परमेश्वर के अर्पण करने से मनुष्य के सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ २७६ ॥

जिन मनुष्यों को अपनी उन्नति करने का ध्यान, प्रकाश, बल साहस है जो धर्मानुकूल कार्य और उद्योग करते हैं, वह कभी निरधन नहीं होते ॥ २७७ ॥

अर्थे सिद्धं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥ २७८ ॥
यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः ।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥ २७९ ॥
यो धर्ममर्थं कामञ्च यथाकालं निषेवते ।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥ २८० ॥
सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति ॥२८१॥
बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणांनिबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥ २८२ ॥
अमात्यलाभोभद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
तृतीयं धनलाभन्तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥ २८३ ॥
यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहंबलम् ।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥ २८४ ॥

जो मनुष्य अपने कल्याण की इच्छा करे तो वह आदि से धर्म ही करे, क्योंकि धर्मात्मा मनुष्यों का प्रयोजन कभी नष्ट नहीं होता, जैसा स्वर्ग लोक से अमृत नहीं नष्ट होता ॥ २७८ ॥

जो सदा पाप कर्मों से भागता है और अपने मन को धर्म में लगाता है वही मनुष्य जगत और आत्मा को जानता है ॥ २७९ ॥

जो पुरुष धर्म अर्थ काम को समयानुकूल करता है वह अवश्य इन तीनों के प्रभाव से मोक्ष पाता है ॥ २८० ॥

जो क्रोध और आनंद के वेग को रोकता और आपत्ति पड़ने पर डर नहीं करता वही सुखी होता है। योग्य मंत्री, धन, अपने पुरुषों का अधिकार, जाति और बाहुबल यह पांच बल हैं ॥ २८१, २८२, २८३, २८४ ॥

येनैते तानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद्बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते ॥ २८५ ॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तो
श्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि
नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥ २८६ ॥

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽति तेजसः ॥ २८७ ॥

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढ़स्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुक्तो तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥ २८८ ॥

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥ २८९ ॥

जो इन पांचो बलों को ग्रहण करता है उसको सब से श्रेष्ठ बुद्धि बल भी मिलता है ॥ २८५ ॥

जो अपने बुद्धिरूपी बाण से शत्रु का नाश करता है उसकी कोई वैद्य चिकित्सा नहीं करसकता, और न औषधी, होम, मंत्र, मंगल अथर्वण वेद के मंत्र उसका रोग दूर करसकते हैं ॥ २८६ ॥

सर्प अग्नि सिंह और कुलीन लड़का इनका मनुष्य कभी अपमान न करे, यह बड़े तेजस्वी होते हैं ॥ २८७ ॥

क्योंकि अग्नि का तेज इस लोक में बड़ा है, वह लकड़ीमें गुप्त रूप से रहता है परन्तु लकड़ी को नाश नहीं करता जब तक कि अग्नि न निकालीजाय, उसी अग्नि का तेज जब मथकर निकालाजाता है तो वह अग्नि अपने तेज से सब वन को भस्म करदेती है ॥ २८८, २८९ ॥

पीठं दत्वा साधवोऽभ्यागताय
आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां
ततो दद्यान्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २९० ॥
यस्योदकं मधुपर्कञ्च गाञ्च
न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे ।
लोभाद्भयादर्थ कार्पण्य तो वा
तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्य्याः ॥ २९१ ॥
चिकित्सकः शल्यकर्त्तावकीर्णी
स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च ।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च
भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ २९२ ॥

साधू लोगों के पास जो अभ्यागत आजाता है उसको वे आसन देकर जल से उसके पैर धोते हैं फिर उसकी कुशल क्षेम पूछकर और कहकर उसको भोजन कराते हैं ॥ २९० ॥

जिसके घर से वेद का जाननेवाला ब्राह्मण वा अतिथि लोभ भय और दुष्टता से विना मधुपर्क और भोजन के चलाजावे उसका जीवन महात्माओं ने वृथा ही कहा है ॥ २९१ ॥

घाव करनेवाला वैद्य, चोर, भ्रष्ट ब्रह्मचारी, दुष्ट, मदादि पीनेवाला गर्भ का गिरानेवाला, वेद का बेचनेवाला अर्थात् धन लेकर वेद का पढ़ानेवाला, और जिसकी रुचि पाप में रहती हो—यह मनुष्य अतिथि भी हो तो भी इनको जल मात्र न देना चाहिये ॥ २९२ ॥

अविक्रेयं लवणं पक्वमन्नं
दधि क्षीरं मधु तैलं घृतञ्च ।
तिलामांसं फलमूलानि शाकं ।
रक्तं वासः सर्वगन्धा गुड़ाश्च ॥ २९३ ॥
अरोषणांयः समलोष्टाश्मकाञ्चनः
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः ।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ २९४ ॥
नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः
सुसंयतात्माग्निकार्य्येषु चोद्यः ।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो
धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥ २९५ ॥

नमक, दूध, सहत, तेल, घी, तिल, मांस, फल, फूल, शाक, कपड़ा, गुड़, अन्न, और सम्पूर्ण सुगंधों के बेचनेवाले ब्राह्मण के पैर भी न धोना चाहिये ॥ २९३ ॥

जो क्रोध नहीं करता, जो मिट्टी के ढेले के समान सोने आदि को जानता हो जो दुख और सुख से अलग हो, जिसको मिलाप और झगड़े से कुछ प्रयोजन न हो, जो निंदा और प्रशंसा से अलग हो, जो प्यारे अप्यारे को समान देखे वही साधू है ॥ २९४ ॥

जो जल और शाकादि का भोजन करता मन को रोकता और हवनादि करने में तत्पर रहता है और वन में बसकर साधुओं का आदर करता है, ऐसे पुरुष को तपस्वी कहते हैं ॥ २९५ ॥

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥ २९६ ॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ २९७ ॥
अनौद्धुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥ २९८ ॥
पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥ २९९ ॥
भृत्यैर्वाणिज्यचारञ्च पुत्रैः सेवेत च द्विजान् ।
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ ३०० ॥

जो मनुष्य बुद्धिमानों से वैर करके यह समझता है कि मैं उससे बहुत दूर हूं वह मेरा क्या करसकता है यह उसकी भूल है क्योंकि बुद्धिमान के बुद्धि रूपी हाथ बहुत लंबे हैं कि जिससे वह अपने शत्रु को दूर ही से नाश करदेता है ॥ २९६ ॥

विश्वास करने योग्य मनुष्यों ही का विश्वास करना चाहिये, अन्यथा अयोग्य मनुष्यों का विश्वास करने से सर्वनाश होजाता है ॥ २९७ ॥

मनुष्यों को उचित है कि किसी की हंसी न करें, स्त्रियों को वश में रक्खें, किसी का भाग न छीनें, सुंदर लक्षण युक्त स्त्री का सदा आदर करते रहें, क्योंकि स्त्रियां घर का धन और उसकी शोभा हैं इसीलिये उनकी सदा रक्षा करना चाहिये ॥ २९८, २९९ ॥

नौकरों से व्योपार, पुत्रों से ब्राह्मणों की सेवा, जल से अग्नि की सेवा, सत्य से राजा की सेवा, और पत्थर से लोहे का काम, जो करता है उसका तेज सब जगह जासकता है ॥ ३०० ॥

स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्य्यमश्नुते ।
करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥ ३०१ ॥
धर्मकामार्थकार्य्याणि तथा मन्त्रो न विद्यते ।
गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ ३०२ ॥
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोविधीयते ।
नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥ ३०३ ॥
एकः स्वाद न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छे द्ध्वानं नैकः सुप्तेषु जाग्रयात् ॥ ३०४ ॥
अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान् ।
नापरीक्ष्य महीपालः कुर्य्यात् सचिवमात्मनः ॥ ३०५ ॥
अप्रशस्तानि कार्य्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स तेषां विपरिभ्रंशाद्भ्रश्यते जीवितादपि ॥ ३०६ ॥

जिस राजा की मन्त्रणा को कोई न जानसके वही राजा सब को देख और बहुत दिनों तक सुख पूर्वक राज्य करसक्ता है, श्रीमानों को उचित है कि काम पूरा होने के पहले किसी से न कहे और जब सिद्ध होजावे तो प्रकाशित करदे ॥ ३०१, ३०२ ॥

श्रीमानों को योग्य है कि धर्म कार्यों का विचार पहाड़ की चोटी एकांत अटारी और बिना तिनके के जंगल में करें जहां कोई न जासके ॥ ३०३ ॥

मनुष्य अकेला स्वादिष्ट भोजन और विचार न करे न अकेला मार्ग चले और न सबके सोने पर अकेला जागता रहे ॥ ३०४ ॥

मूर्ख मित्र और बुद्धिमान शत्रु को भी बिना परीक्षा मंत्री न बनावे ॥ ३०५ ॥

जो मूर्ख भूल से भी बुरा काम करता है वह उन कार्यों के नष्ट होने से आप भी नष्ट होजाता है ॥ ३०६ ॥

कर्मणान्तु प्रशस्तानामनुष्टानं सुखावहम् ।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ ३०७ ॥
अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति ।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ३०८ ॥
स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ ३०९ ॥
अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्यवेक्षिणः ।
आत्मप्रत्ययकोषस्य स्वाधीनेयं वसुन्धरा ॥ ३१० ॥
नाममात्रेण तुष्येत कृत्येन च महीपतिः ।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत् ॥ ३११ ॥

श्रेष्ठ कर्मों के करने से मनुष्यों को सुख मिलता है और जो उन कामों को नहीं करता वह पीछे पछताता और क्लेश उठाता है ॥ ३०७ ॥

जैसे बिना वेद पढ़ा ब्राह्मण शुभ कार्य नहीं करसकता वैसे ही बिना छः नीति जाने हुए राजा मन्त्रियों के वचन सुनने योग्य नहीं होता ॥ ३०८ ॥

जो हानि लाभ को समझता छः नीतों को जानता और उत्तम मनुष्यों का आदर करता है उसी के वश में पृथ्वी रहती है ॥ ३०९ ॥

जिस अमान का हर्ष और क्रोध निष्फल नहीं होता और किये हुए कामों को आप देखता और खजाने को अपने वश में रखता है उसी के वश में पृथ्वी रहती है ॥ ३१० ॥

जो राजा राज्य से प्रसन्न होकर संतोष करता और नौकर को सुख देता और किसी का कुछ नहीं छीनता है वही राजा कहाने योग्य है ॥ ३११ ॥